पी० एन० ईश्वर अय्यर और अन्य

बनाम

रजिस्ट्रार, उच्चतम न्यायालय

(P. N. Eswara Iyer and Others

v.

Registrar, Supreme Court of India)

(1 फरवरी, 1980)

(न्यायाधिपति वी० आर० कृष्ण अय्यर, एस० मुर्तजा फजल अली, डी० ए० देसाई, आर० एस० पाठक और ए० डी० कौशल)

संविधान, 1950—अनुच्छेद 14, 19, 21, 137 और 145(ङ) [सपठित सुप्रीम कोर्ट रूल्स, 1966, आदेश 40 नियम 2 और 3 तथा 5] पुनर्विलोकन—परिचालनपद्धति द्वारा पुनर्विलोकन—उच्चतम न्यायालय द्वारा अपने निर्णयों और आदेशों के पुनर्विलोकन विषयक नियम 2 और 3 में संशोधन किया जाना तथा नियम 5 का अन्तः स्थापित किया जाना—संशोधित नियम 2 के अनुसार किसी आदेश या निर्णय के पुनर्विलोकन विषयक आवेदन के साथ किसी अधिवक्ता का समर्थनकारी प्रमाणपत्र संलग्न करने की आवश्यकता तथा संशोधित नियम 3 के अनुसार किसी निर्णय या आदेश के पुनर्विलोन सम्बन्धी आवेदन का निपटारा, मौखिक दलीलों के बिना, परिचालन द्वारा किए जाने का उपबन्ध किया जाना—संशोधन द्वारा संविधान के अनुच्छेद 14, 19, 21 के उपबन्धों के उल्लंघन होने का आक्षेप किया जाना परिचालन पद्धति का मुख्य उद्देश्य न्यायाधीशों के समय का अधिकतम उपयोग करना तथा पुनर्विलोकन विषयक पिटीशनों का शीघ्रता से निपटारा करना है—अतः संशोधित उपबन्ध संविधान के अनुच्छेद 14, 19, 21 का उल्लंघन नहीं करते है।

उच्चतम न्यायालय ने संविधान के अनुच्छेद 145 (ङ) के अधीन पुनर्विलोकन सम्बन्धी पिटीशनों के विषय में सुप्रीम कोर्ट रूल्स के नियम 2(1)

और 3 में 1978 में संशोधन किया तथा नए सिरे से नियम 5 अन्तःस्थापित किया। संशोधित नियम 2(1) के अनुसार, अब पुनर्विलोकन के लिए जो आवेदन किया जाएगा, वह पिटीशन के द्वारा होगा और जिस निर्णय तथा आदेश का पुनर्विलोकन कराना ईप्सित हो, उसके किए जाने की तारीख से तीस दिनों के भीतर फाइल किया जाएगा। उस आवेदन में पुनर्विलोकन के जो आधार हों, वे उपवर्णित किए जाने चाहिएं। संशोधन से पूर्व नियम 2(1) में ऊपर उल्लिखित उपबन्ध तो था ही, इसके अलावा उसमें यह भी उपबन्ध था कि जब तक न्यायालय अन्यथा आदेश न दे, उस आवेदन के साथ उस अधिवक्ता का जो पुनर्विलोकन की ईप्सा करने वाले पक्षकार की ओर से उपसंजात हुआ था, प्रमाणपत्र संलग्न रहेगा और उस प्रमाणपत्र में तर्कसंगत राय देकर उस आवेदन का समर्थन किया जाना चाहिए था। नियम 3 में मुख्य रूप से जो नया उपबन्ध किया गया है, वह यह है कि पुनर्विलोकन के लिए प्रस्तुत आवेदन का निपटारा, किन्हीं मौखिक दलीलों के बिना ही परिचालन द्वारा किया जाएगा किन्तु, पिटीशनर अपने पिटीशन के समर्थन में लिखित रूप में अतिरिक्त दलीलें पेश कर सकेगा। न्यायालयया तो उस पिटीशन को खारिज कर देगा या विरोधी पक्षकार के पास सूचना भेजने का निदेश देगा जहां तक सम्भव हो, पुनर्विलोकन का पिटीशन उन्हीं न्यायाधीशों के समक्ष प्रस्तु किया जाना चाहिए जिन्होंने उस मामले की सुनवाई की थी और अपना निर्णय दिया था। मौखिक नियम 3 में, पुनर्विलोकन के पिटीशन की सुनवाई के लिए न्यायालय के समक्ष प्रारम्भिक (मौखिक) सुनवाई और विरोधी पक्षकार के पास सूचना भेजने सम्बन्धी न्यायालय के आदेश के लिए उपबन्ध था। अन्तः स्थापित नए नियम 5 के अनुसार, यदि आदेश या निर्णय के पुनर्विलोकन विषयक पिटीशन का निपटारा कर दिया गया है, तो उस निर्णय या आदेश का पुनर्विलोकन करने के लिए आगे कोई भी आवेदन प्रस्तुत नहीं किया जा सकेगा। असंशोधित और संशोधित नियम 3 में जो मुख्य अन्तर है वह यह है कि अब संशोधन के बाद अब पुनर्विलोकन सम्बन्धी पिटीशन का निपटारा, मौखिक दलीलों के बिना ही, परिचालन द्वारा, किया जा सकेगा और सुनवाई के लिए पुर्विलोकन-पिटीशन के समर्थन में किसी अधिवक्ता का प्रमाणपत्र संलग्न करने की आवश्यकता नहीं रह गई है। अधिवक्ताओं ने यह अनुभव किया कि इस उपबन्ध के परिणामस्वरूप सिविल मामलों और दाण्डिक मामलों के पुनर्विलोकन के बीच विभेद किया गया है तथा उससे उनके हितों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा। पिटीशनर ने तथा बार कौंसिल आफ इण्डिया ने भी मध्यक्षेपी के रूप में, अनुच्छेद 32 के अधीन उच्चतम न्यायालय की आरम्भिक अधिकारिता के

1980(2) eILR(PAT) SC 15

अधीन यह रिट पिटीशन फाइल किया कि उन संशोधनों से संविधान के अनुच्छेद 14,19 और 21 के अधीन गारण्टीकृत मूल अधिकारों का उल्लंघन हुआ है और इसी कारण वे संशोधन संविधान के उपबन्धों के प्रतिकूल है। रिट पिटीशन खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित—अनियंत्रित पुनर्विलोकन कभी भी नियम नहीं रहा है। पुनर्विलोकन उचित आधारों द्वारा समर्थित होना चाहिए, अन्यथा प्रत्येक असंतुष्ट वादार्थी नेमिक पुनर्विलोकन द्वारा अपनी हार का बदला ले सकता है और इस प्रकार अनिर्णीत निर्णय पूंजी में प्रारम्भिक सुनवाई या सावधानीपूर्वक अन्तिम सुनवाई के इन्तजार में लगे हुए मामलों की लम्बी कतार के निपटारे में बाधा पहुंच सकती है। इस बात पर बल देना बहुत ही युक्तियुक्त है कि पुनर्विलोकन के लिए उचित आधारों का अस्तित्व, न्यायालय का और समय लिए जाने से पूर्व उत्तरदायित्वपूर्ण तरीके से सिद्ध किया जाना चाहिए। इस प्रकार मूल नियम में अधिवक्ता द्वारा, जो मामले में पहले हाजिर हुआ था, इस आशय का प्रमाणपत्र अपेक्षित था। यहां पर, काउन्सेल न्यायालय के अधिकारी के रूप में कार्य करता है तथा पुराने नियम 2(1) की आज्ञा के अधीन वह पुनर्विलोकन का उपयुक्तता-प्रमाणपत्र देता था या इनकार करता था। यदि इस प्रकार प्रमाणपत्र दिया जाता था, तो प्रारम्भिक मौखिक सुनवाई होती थी। ऐसी मौखिक सुनवाई के पश्चात् न्यायालय दूसरे पक्षकार को नोटिस देता था पिटीशन खारिज कर देता था। या यदि प्रमाणन की प्रक्रिया ठीक तरह से चलती और मूल निर्णय की वास्तविक गलतियां तथा उसे बिगाड़ने वाली स्पष्ट भूलें पुनर्विलोकन के निर्बन्धित आधार होती, तो यह पद्धति बहुत ही उचित थी। किन्तु प्रमाणन में शिथिलता और पुनर्विलोकन विषयक आवेदन आवेदन फाइल करने में हुई शिथिलता से न्यायालयों में अवांछित पुनर्विलोकन विषयक पिटीशनों की भीड़ लग गई। निर्णयपंजी के संकट ने, ऐसे उपयुक्त व्यक्तियों को जो सुनवाई के लिए अपनी बारी का इन्तजार करते रहते थे, मुकदमे में मिलने वाले न्याय पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता था। अन्यथा भी पुनर्विलोकन के लिए झूठे समावेदन परिणामस्वरूप सर्वोच्च न्यायालय द्वारा भी मुकदमों में निर्णयों को अन्तिम रूप दिए जाने के कार्य में जुए का तत्व आ गया था और इससे अनिश्चितता की स्थिति उत्पन्न हो गई थी। यदि प्रत्येक पराजित पक्षकार पुनर्विलोन करके भाग्य आजमाना चाहता हो, और यदि संयोगवश विरोधी पक्षकार को कुछ मामलों में सूचना जारी कर दी गई, तो निस्सन्देह विरोधी पक्षकार को बहुत ही अधिक खर्च उठाना पड़ेगा और वह

परेशानी में पड़ जाएगा। यदि ऐसा खेल प्रचलित हो जाएगा तो निर्णय की अन्तिमता की पवित्रता जो न्याय के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण है, दूषित हो जाएगी। और अनुभव से यह प्रतीत होता है कि ऐसा खेल आम हो गया है। गुणताहीन पुनर्विलोकन विषयक पिटीशनों की भीड़ ने, जिन्हें सुनवाई करके खारिज कर दिया गया, लोक न्याय के प्रवाह में बाधा पहुंचाई है। (पैरा 8)

सापेक्षता के संसार में कोई बात आत्यान्तिक नहीं होती। न्यायाधीशों के सीमित समय पर मुकदमों का दबाव, देश के ऐसे महत्वपूर्ण विवाद्यकों पर जिन्हें न्यायालय की कार्य-सूची में स्थान मिल गया है, अच्छी तरह विचार करने का गम्भीर उत्तरदायित्व ऐसा गहन अध्ययन और वृहत् अनुसंधान जो उच्चतम न्यायालय के ऐसे निर्णयों को बुद्धिमत्तापूर्ण बनाता है, जिन्हें पूर्ण अन्तिमता प्राप्त होती है तथा पुराने मुकदमों का अनियंत्रित बकाया-कार्य जो अन्याय को और लम्बा खींचकर, न्यायिक प्रक्रिया को महंगा बना देता है—ये सभी बातें अधिकांश मामलों के लिए न्यायालय का समय बचाने की दृष्टि से न्यायालय के प्रबन्ध को सुव्यवस्थित करने और दोषरहित बनाने पर जोर देती हैं, जिससे कि मामलों के गुण और उनके विनिश्चित किए जाने की संख्या का कम से कम त्याग करना पड़े। यदि ऐसी कोई अधिक क्षति हुए बिना, कतिपय वर्ग के मामलों का निपटारा मौखिक सुनवाई के बिना किया जा सकता है, तो ऐसा प्रयोग न करने के लिए कोई वैध कारण है नहीं है। यदि पेपरबुक का बारीकी से परिशीलन करने पर न्यायाधीश का यह मत हो कि मामले में कोई सार या कोई विशेष आधार नहीं है, तो सामान्यतः मौखिक दलील देकर मामले का निपटारा करने में कोई हर्ज नहीं है। वास्तविक समस्या इस बात का पता लगाने की है कि कौन-से वर्ग के मामलों का निपटारा अन्याय की जोखिम उठाए बिना तथा मौखिक सुनवाई के बिना, किया जा सकता है। यह अनन्तिम दोषाक्षमता का अन्तिम न्यायालय जो सर्वोच्च न्यायालय है, जो मुकदमों का निपटारा न केवल चुनौती से परे करता है, बल्कि निपटारा करता है, एक ऐसा न्यायिक संस्थान भी है जिस पर देश की विधि को प्राधिकृत रूप से घोषित करने का सांविधानिक उत्तरदायित्व भी है। इसलिए यदि मौखिक सुनवाई प्रक्रिया को त्रुटिहीन बनाएगी, तो उसका त्याग नहीं किया जाना चाहिए। इस पर भी जहां राष्ट्रीय महत्व के विवाद्यक, जिनका हल केवल उच्चतम न्यायालय ही पर्याप्त रूप से कर सकता है, अन्तर्ग्रस्त न हों और यदि उचित मौखिक सुनवाई कर दी गई हो और उचित आदेश पहले ही कर दिए गए हों, तो न्यायपीठ के न्यायाधीशों के सामने पुनर्विलोकन विषयक पिटीशन की मांग अधिक नहीं हो सकती, विशेषतया तब यदि मामले

1980(2) eILR(PAT) SC 1

को देखने से कोई नई बात का पता न चलता हो या मुकदमे में कोई गम्भीर बात न हो। यहां पर यदि कोई ऐसा मामला हो जिसकी परीक्षा की जानी चाहिए या जिससे यह ध्वनित होता हो कि पहले गलती हो गई है, तो न्यायालय मामले की मौखिक सुनवाई के लिए तारीख निश्चित कर सकेगा। परिचालन द्वारा निपटारा सोच-समझकर उठाया गया ऐसा जोखिम है जिसमें कोई समस्या या खतरा दृष्टिगोचर नहीं होता है। (पैरा 24)

भारतीय गणतन्त्र में न्याय खुलेआम किया जाता है और यदि न्यायाधीश न्यायालय के कक्षों को बन्द कर देते हैं, घर में कागज-पत्र पढ़ते हैं, एकान्त में चर्चा करते हैं और न्याय चाहने वालों के प्रतिनिधियों के रूप में न्यायालय में, विधिज्ञ-वर्ग की सुनवाई किए बिना अन्तिम आदेश जारी कर देते हैं, तो विधि-शासन एक रहस्यमय जाल में उलझ जाएगा और गाउन पहने हुए न्यायाधीशों द्वारा जारी किए गए प्रच्छन्न आदेशों से न्याय के नाम पर कलंक लग जाएगा। इस बात से भी सहमति व्यक्त की गई कि मौखिक वकालत का न्याय सम्बन्धी प्रक्रिया में अस्थायी महत्व है जिसकी बराबरी बहुत ही प्रभावशाली पक्षकार भी नहीं कर सकता तथा बहुत ही सतर्क न्यायाधीश उसके बगैर विचार नहीं कर सकता। जटिल विधिक तर्क का बौद्धिक ताना-बाना तथा नाजुक तथ्यों पर बल देने की आदेशपूर्ण कला प्रायः कागज और कलम की कला से परे की बात हो सकती है। इस बात में कोई संविवाद नहीं है कि परिचालन द्वारा निपटारा, जो कि सचिवालय का चलन है, न तो सामान्य न्यायिक तकनीक हो सकता है और न ही मौन टिप्पणियां न्यायाधीश और अधिवक्ताओं के तर्कों का स्थान ही ले सकती हैं। न्यायिक संदर्भ में "परिचालन" से केवल मौखिक तर्कों के माध्यम से न्यायालय में परिचालन, न कि न्यायिक मंत्रणा में चर्चा करके परिचालन, अभिप्रेत है। न्यायाधीशों को संशोधित नियम के अधीन भी अवश्य ही परस्पर मिलना चाहिए, सामूहिक रूप से चिंतन करना चाहिए और निष्कर्ष पर पहुंचना चाहिए। टिप्पणियों सहित, फाइलों के सचलन से समस्या हल नहीं हो सकती। अन्यथा पारस्परिक अभिप्रेरणा तर्कयुक्त विसम्मति और संयुक्त निर्णय विफल हो जाएगा और मौखिक तर्क के अभाव में राय के मशीनीकरण और अनुपस्थिति में मतों के प्राख्यान के कारण न्यायिक प्रज्ञा उस मानसिक प्रत्युर्वरीकरण से वंचित हो जाएगी जो न्यायपीठ के विनिश्चय के लिए आवश्यक है। (पैरा 13)

न्यायिक प्रक्रिया का सामान्य नियम मौखिक सुनवाई है और उसका लोप किया जाना अप्रायिक अपवाद है। बहुत बड़ी संख्या में उपस्थित जनता के समक्ष पूर्ण सुनवाई और मौखिक बहस समाप्त हो गई है। यह एक दूसरा अनुसंधान है। यहां पर लिखित तर्क दिए जाते हैं। सम्पूर्ण कागज-पत्र न्यायाधीशों के पास होते हैं। न्यायाधीश स्वयं ही वे व्यक्ति होते हैं जिन्होंने पहले मौखिक बहस सुन रखी होती है। तथापि, यह बहुत से न्यायाधीशों की बात है, न कि केवल एक की। इसके अतिरिक्त यदि, प्रथमदृष्टया, आधार सिद्ध कर दिए जाते हैं, तो आगे मौखिक सुनवाई के लिए निदेश दिया जाता है। यह मानते हुए कि सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों में आधारिक सद्भावना मौजूद रहती है, यह तर्क देना असम्भव है कि न्यायालय में मौखिक तर्कों के बारे में आंशिक पूर्वानुमान या तो अनुचित या अयुक्तियुक्त है, या इतना दूषित है कि उससे नैसर्गिक न्याय का अतिक्रमण होता है तथा वह सांविधानिक विधिशास्त्र की सुविधाओं से वंचित करता है। इस बात को सदैव स्मरण रखना चाहिए कि पुनर्विलोकन उन्हीं तर्कों की दूसरी बार सुनवाई करना नहीं है जिन पर एक बार विचार किया जा चुका है और जिन्हें अस्वीकृत किया जा चुका है। अस्वीकृति गलत हो सकती है, किन्तु कोई चारा नहीं है। विसम्मत अल्पमत अपने निर्णयों में प्रबल बहुमत को गलत मानता है, किन्तु इस सम्बन्ध में कुछ किया नहीं जा सकता। (पैरा 19)

क्या मौखिक वकालत के विलोपन और न्याय के करने के उद्देश्य के बीच कोई सम्बन्ध है? उद्देश्य न्यायालय के समय का अधिकतम उपयोग करना है तथा पुनर्विलोकन पिटीशनों का निपटारा द्रुतगति से करना है। स्वयं न्यायाधीशों द्वारा न्यायालय की बैठकों के बाहर के समय के दौरान न्यायाधीशों पर पुनर्विलोकन के कागज-पत्रों को पढ़ने और उस पर चर्चा करने के लिए सहमत होकर भारी भार डाले जाने के बावजूद भी, न्यायालय के समय में अनुचित हस्तक्षेप किए बिना, पुनर्विलोकन विषयक पिटीशनों के निपटारे में स्पष्ट तेजी आई है। उसी प्रकार से यह बात स्पष्ट है कि न्यायपीठें मामलों की सुनवाई के लिए और अधिक समय देने में समर्थ हो गई हैं। संक्षेप में परिचालन पद्धति जो कि न्यायालय में न्यायाधीशों के समय की बचत और पुनर्विलोकन विषयक पिटीशनों के शीघ्र निपटारे के उद्देश्यों से सम्बद्ध है, लाभ स्पष्ट है। उन्हीं न्यायाधीशों की, जिन्होंने मामले की सुनवाई प्रथमतः केवल कुछ मिनटों तक या उससे कुछ अधिक समय तक की थी, पुनर्विलोकन न्यायपीठों का गठन करना, और तब नियमित न्यायपीठों को विसर्जित करना और उनकी पुनर्व्यवस्था करना, विशेषतया तब जबकि

पुनर्विलोकन विषयक पिटीशनों में पहले ही की बातें व्यर्थ में दोहराई जाती हैं, ऐसा न्यायिक कृत्य है जिसे न्यायालय वहन नहीं कर सकता। नियम तर्कसंगत है तथा क्षति सीमित है। (पैरा 21)

प्रयोजन स्पष्ट भाषा लचीली तथा आवश्यक शक्ति का निर्वचन प्राकृतिक रूप से व्यापक होना चाहिए। मूल शक्ति अनुच्छेद 137 से व्युत्पन्न होती है और वह दाण्डिक कार्यवाहियों के लिए उतनी ही विस्तृत है जितनी कि सिविल कार्यवाहियों के लिए। इसलिए नियम (आदेश 40 नियम 2) की शब्दावली में जो अन्तर है, उसके बारे में यह अर्थान्वयन किया जाना चाहिए कि उसकी परिधि के भीतर वही कार्य-क्षेत्र आता है तथा उसे कोई कृत्रिम विसंगति पैदा करने वाला नहीं समझा जाना चाहिए। यदि "अभिलेख" शब्द से उसके अर्थ विषयक परिधि के भीतर कोई ऐसी सामग्री अभिप्रेत है जो न्यायालय की इजाजत से अभिलेख पर बाद में लाई गई हो, तो उसकी परिधि के भीतर बाद की घटनाएं, नया दृष्टिकोण और ऐसे अन्य आधार आएंगे जो सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 47 के नियम 1 में मिलते हैं। सिविल और दाण्डिक कार्यवाहियों के क्षेत्रों को समान ठहराने में कोई अजेय कठिनाई तब नहीं होती, जबकि पुनर्विलोकन की शक्ति उसी स्रोत से प्राप्त होती है। (पैरा 35)

पुनर्विलोकन विषयक आवेदन के सम्बन्ध में यह बात स्पष्ट है कि मौखिक सुनवाई उस दशा में अनिवार्य अपेक्षा नहीं होती यदि प्रारम्भिक परीक्षा पर पुनर्विलोकन विषयक आवेदन सारहीन पाया जाता है। पुनर्विलोकन विषयक आवेदन मूल कार्यवाही का निपटारा करने वाले न्यायालय के निर्णय पर पुनर्विचार करवाने का एक प्रयत्न है। इसमें इससे अधिक कोई बात नहीं की गई है। न्यायालय ने संविवाद के गुणागुण की पहले से ही परीक्षा कर ली है और पुनर्विलोकन की शक्ति की मामूली परिधि को देखते हुए ईप्सित पुनः परीक्षा पहले ही निपटाए गए संविवाद की परिधि से परे नहीं की जा सकती। यह सारतः वही आधार है जिस पर या तो पूर्णतया: या भागतः पुनः विचार करना है। तथापि, यदि न्यायालय उसे आवश्यक समझता है, तो मौखिक दलीलों के लिए उपबन्ध करने की सावधानी बरती गई है। वह आवश्यकता दोनों प्रकार के मामलों में से किसी भी मामले में उत्पन्न हो सकती है। न्यायाधीशों के समक्ष पुनर्विलोकन विषयक आवेदन पेश किए जाने पर, वे पुनर्विलोकन विषयक आवेदन के अनुरूपण स्वरूप पिटीशनर द्वारा फाइल की गई किन्हीं भी अतिरिक्त लिखित दलीलों के साथ-साथ उस पर विचार करेंगे।

यदि न्यायाधीश पुनर्विलोकन विषयक आवेदन की छानबीन करने पर यह अभिनिर्धारित करते हैं कि पुनर्विलोकन के लिए कोई भी मामला नहीं बनता है, तो वे पुनर्विलोकन विषयक आवेदन को अस्वीकृत करेंगे। इसके विपरीत, वे यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि पुनर्विलोकन के लिए प्रथमदृष्टया एक अच्छा मामला बनाया गया है और इस कारण वे यह निदेश देंगे कि प्रत्यर्थी के नाम सूचना भेज दी जाए, और उसके आधार पर पक्षकारों की उपस्थिति में मौखिक सुनवाई होगी। यह एक ऐसा अवसर है जिस पर मौखिक सुनवाई आवश्यक है। यदि न्यायाधीशों का यह समाधान नहीं होता है कि पुनर्विलोकन विषयक आवेदन के आधार पर प्रथमदृष्टया कोई मामला बनता है, किन्तु उनका यह समाधान भी नहीं हुआ है कि मामले में किसी भी प्रकार का कोई सार नही है और उनकी यह राय है कि पुनर्विलोकन विषयक आवेदन के गुणागुण के आधार पर प्रथमदृष्टया किसी निश्चित राय पर पहुंचने के लिए आवेदक की मौखिक रूप से सुनवाई की जानी वांछनीय है, तो वे उसे, तदनुसार, सूचना देंगे और मौखिक सुनवाई का अवसर प्रदान करेंगे। ऐसी मौखिक सुनवाई पर यदि अन्तिम रूप से उनका यह समाधान हो जाता है कि पुनर्विलोकन के लिए प्रथमदृष्टया कोई मामला नहीं बनता है तो न्यायाधीश पुनर्विलोकन विषयक आवेदन को खारिज कर सकते हैं, किन्तु प्रथमदृष्टया मामला बनाने की दशा में वे प्रत्यर्थी के नाम सूचना निकालेंगे और पक्षकारों की उपस्थिति में मौखिक सुनवाई होगी। यह बात स्पष्ट है कि मौखिक सुनवाई से वंचित करने की बात प्रारम्भिक प्रक्रम तक ही सीमित है, जब कि पुनर्विलोकन विषयक आवेदन न्यायाधीशों के समक्ष पेश किया गया हो और उसी दशा में वे इस बात का अवधारण करने के प्रयोजन के लिए आवेदन की छानबीन करते हैं कि क्या मामले में आगे कार्यवाही करने के लिए कोई कारण है या वह प्रारम्भ में ही अस्वीकृत किए जाने के लायक है। सिद्धांत के आधार पर यह अभिनिर्धारित करना सम्भव नहीं है कि उस प्रारम्भिक प्रक्रम पर भी, पुनर्विलोकन का आवेदक मौखिक रूप से सुने जाने का हकदार है। मौखिक सुनवाई का महत्व इस बात में निहित है कि न्यायालय को सम्बोधित करने वाले काउन्सेल इस बात की विवेचना करने में समर्थ हो सकें कि संविवाद के कौन-से पहलू हैं जिन पर अधिक प्रकाश डालने की आवश्यकता है। इसी प्रकार न्यायालय किसी मुद्दे पर अपनी शंकाओं को व्यक्त करने के लिए किसी मौखिक सुनवाई का उपयोग कर सकता है और उन मुद्दों पर काउन्सेल से स्पष्टीकरण प्राप्त कर सकता है। किन्तु यदि इस बारे में किसी भी प्रकार की कोई शंका हो कि पुनर्विलोकन विषयक आवेदन

1980(2) eILR(PAT) SC 15

में बिल्कुल ही कोई सार नहीं है तो मौखिक सुनवाई अनावश्यक हो जाती है और अधिक से अधिक वह एक औपचारिकता मात्र रह जाती है। (पैरा 41)

लिखित दलील का सावधानीपूर्वक प्रारूपण किया जा सकता है और सुस्पष्ट रूप से अभिव्यक्ति की जा सकती है तथा, अपनी लिखित अन्तर्वस्तु की दृष्टि से, उसकी ऐसी व्यवस्था की जा सकती है जिससे कि वह दलील की वास्तविक परिधि और गुण को पाठक के ध्यान में स्पष्ट रूप से ला दे। इस बात पर विश्वास नहीं किया जा सकता कि पुनर्विलोकन विषयक किसी आवेदन में लिखित दलील वादार्थी के पक्षकथन को पेश करने के मामले में पर्याप्त न्याय नहीं कर सकती। यदि मौखिक सुनवाई की आवश्यकता है, तो वह इसके पहले उल्लिखित इस कारण से है कि काउन्सेल को न्यायालय के मस्तिष्क की शंकाएं मालूम हो जाती हैं तथा न्यायालय को अपनी शंकाएं दूर करने का अवसर प्राप्त हो जाता है। मौखिक सुनवाई का यही लक्षण उसे उसका प्रमुख महत्व और संगतिप्रदान करता है। किन्तु यह बात कि मौखिक सुनवाई सभी प्रकार के मामलों में तथा प्रत्येक मामले के प्रत्येक प्रक्रम पर आज्ञापक है, ऐसी प्रतिपादना है जिसे स्वीकार करना सम्भव नहीं है। (पैरा 42)

निर्दिष्ट-निर्णय

		पैरा
[1975]	[1975] 3 उम० नि० प० 575=[1975] 3 एस० सी० आर० 933 : **सौ चन्द्र कान्ता और एक अन्य बनाम शेख हबीब** (Sow Chandra Kanta and Another *v.* Sheik Habib);	8
[1967]	[1967] 2 एस० सी० आर० 14 : **लाला राम बनाम भारत का उच्चतम न्यायालय और अन्य** (Lala Ram *v.* Supreme Court of India and Others);	20

1980(2) eILR(PAT) SC 15

[1963] [1963] सप्लीमेंट (1) [न्या० कृष्ण अय्यर] 885 : प्रेम चन्द गर्ग बनाम एक्साइज कमिश्नर, उत्तर प्रदेश, इलाहाबाद (Prem Chand Garg v. Excise Commissioner, Uttar Pradesh, Allahabad). 4

आरम्भिक रिट अधिकारिता : 1979 की रिट पिटीशन सं० 15, 187, 238, 458, 1039, 1069 और 1277.

भारत के संविधान के अनुच्छेद 32 के अधीन रिट पिटीशन।

रिट पिटीशन सं० 151/79 में

पिटीशनर की ओर से	सर्वश्री आर० के० गर्ग, एस० बालकृष्णन और एम० के० डी० नम्बूदरि
प्रत्यर्थी की ओर से	सर्वश्री सोली जे० सोराबजी, सालिसटर जनरल, ई० सी० अग्रवाल०, आर० एन० सचदे और कुमारी ए० सुभाषिणी
पिटीशनर की ओर से (रिट पिटीशन 1038/79 में)	स्वयं पिटीशनर

रिट पिटीशन सं० 187/79 में

पिटीशनर की ओर से	सर्वश्री पी० आर० मृदुल और एन० के० पुरी
प्रत्यर्थी सं० 1 की ओर से	सर्वश्री ए० के गुप्त, विवेकसेठ, ओ० पी० राणा और कुमारी मधु मूलचंदानी
प्रत्यर्थी सं० 2 की ओर से	सर्वश्री सोली जे० सोराबजी, सालिसिटर और जनरल, ई० सी० अग्रवाल० आर० एन० सचदे और कुमारी ए० सुभाषिणी

पिटीशनर की ओर से (रिट पिटीशन सं० 238/79 में	सर्वश्री ए० के० गांगुली और डी० पी० मुखर्जी
पिटीशनर की ओर से (रिट पिटीशन सं० 458/79 में)	सर्वश्री ए० के० गांगुली और ओ० पी० राणा
प्रत्यर्थियों की ओर से (रिट पिटीशन 458 और 238/79 में)	सर्वश्री सोली जे० सोराबजी, सालिसिटर जनरल, आर० एन० सचदे और कुमारी ए० सुभाषिणी
पिटीशनरों की ओर से (रिट पिटीशन सं० 1038, 1069 तथा 1277/79 में)	श्री जी० एल० सांघी (रिट पिटीशन 1277 में) और कुमारी लिली टामस
मध्यक्षेपी की ओर से (वार एसोसिएशन, सुप्रीम कोर्ट)	डाक्टर एल० एम० सिंघवी और श्री सरदार बहादुर सहारिया

अभिलेख-अधिवक्ता

पिटीशनर की ओर से (रिट पिटीशन 151 में)	श्री एम० के० डी० नम्बूदरि
पिटीशनर की ओर से (रिट पिटीशन 187 में)	श्री जे० के० पुरी
पिटीशनर की ओर से (रिट पिटीशन 1069 तथा 1277 में)	कुमारी लिली टामस
पिटीशनर की ओर से (रिट पिटीशन 238 में)	श्री ए० के० गांगुली
पिटीशनर की ओर से (रिट पिटीशन 458 में)	श्री एल० सी० गोयल
प्रत्यर्थियों की ओर से (रिट पिटीशन सं० 1069, 1038, 1277 के सिवाय सभी मामलों में)	कुमारी ए० सुभाषिणी

1980(2) eILR(PAT) SC 15

न्यायालय का निर्णय न्यायाधिपति वी० आर० कृष्ण अय्यर ने दिया।

न्यायाधिपति कृष्ण अय्यर—

यदि संक्षेप में कहा जाए, तो मामलों के इस समूह में पुनर्विलोकन सम्बन्धी इन पिटीशनों में जिनके द्वारा न्यायाधीश मौखिक दलीलों की सहायता के बिना परिचालन द्वारा इस बात का विनिश्चय करेंगे कि क्या समावेदन में कोई सार है, और अपने विवेकानुसार न्यायालय में आगे दलीलों की सुनवाई करने का निर्णय करेंगे, अनुच्छेद 145 के अधीन उच्चतम न्यायालय द्वारा किए गए हाल ही के संशोधन की शक्तियों को चुनौती दी गई है।

2. क्या मौखिक वकालत की विद्यमान्यता—जो कि आंग्ल भारतीय न्याय का वैशिष्ट्य है—न्यायालय की प्रक्रिया में अनन्य संक्राम्य और सर्वव्यापी है या क्या न्यायालय में संक्षिप्त मौखिक वकालत और—यह बात वर्तमान प्रश्न के लिए अधिक महत्वपूर्ण है— वैवेकिक शक्तियों का प्रयोग न करना कम से कम तब अनुज्ञेय है जब कि उससे पहले पर्याप्त रूप से मौखिक सुनवाई की जा चुकी है। द्वितीयतः, क्या मंत्रणार्थ परिचालन द्वारा किसी मामले पर विचार करने के विपरीत सार्वजनिक रूप से खण्ड न्यायपीठ के समक्ष सुनवाई की जानी न्याय का एकमात्र प्रमाण-चिन्ह है, जिसके अभाव में ऐसी कार्यवाही अनुच्छेद 14 में विवक्षित समता के सिद्धान्तों का, अनुच्छेद 19 में समाविष्ट, "युक्तियुक्तता" की सीमाओं का, अनुच्छेद 21 में बद्धमूल प्रक्रिया सम्बन्धी न्यायसंगति का सदैव अतिक्रमण करती है? और अन्त में कार्यवाही सम्बन्धी गोपनीयता का सहारा लेकर क्या मौखिक सुनवाई को नियंत्रित करना या उस पर रोक लगाना हमारी न्यायिक पद्धति के मूल्यों का उपहास नहीं है?

3. न्याय से सम्बन्धित प्रक्रिया की, व्यापक प्रभाव और मौलिक आशय की ये आधारिक समस्याएं संविधान के अनुच्छेद 32 के अधीन प्रस्तुत इन रिट पिटीशनों में विचारार्थ उद्भूत हुई है। आरोप यह है कि मौखिक तर्कों के स्थान पर सार्वजनिक सुनवाई का परित्याग करके परिचालन द्वारा लिखित दलीलें पेश करने और आदेश देने का नवीन उपाय वहां के सिवाय जहां कि—और वह बहुत ही कम होता है—न्यायाधीश अपने विवेकानुसार न्यायालय में तर्क सुनना पसन्द करते हैं, न्यायिक प्रक्रिया के मूल सिद्धान्तों से एक खतरनाक विचलन है। ऐसा हो सकता है कि कुछ समय पश्चात् "सुनवाई" के अन्य क्षेत्रों में इन प्रश्नों के विनिश्चय के, यद्यपि वह अभी पुनर्विलोकन विषयक पिटीशनरों तक ही सीमित है, भावी अप्रत्यक्ष परिणामों की आशंका करते हुए,

1980(2) eILR(PAT) SC 15

सुप्रीम कोर्ट बार एसोसिएशन ने मध्यक्षेप किया हो और पक्षकारों की दलीलों के अनुपूरण-स्वरूप अपने अध्यक्ष डा० एल० एम० सिंघवी की मार्फत संशोधित नियम पर आक्षेप करने के लिए तर्क दिया हो। हमने अन्य अधिवक्ताओं को भी संक्षेप में अपना योगदान देने की अनुज्ञा दी है क्योंकि जब यह न्यायालय महत्वपूर्ण विवाद्यकों पर विचार करता है और उनके सम्बन्ध में अपना विनिश्चय सुनाता है, तो इस प्रकार घोषित विधि सब पर आबद्धकर होती है तथा लोकतन्त्रात्मक औचित्य में यह निहित है कि यदि कार्यवाही न्यायिक प्रक्रिया के अनुसार होती है, राष्ट्र में प्रत्येक अनुज्ञेय स्त्रोत से तर्क और अनुदेश की वाणी का स्वागत किया जाए। सह-भागी होने सम्बन्धी यह सिद्धांत लोगों की परिनिष्ठा को न्यायिक प्रक्रिया के प्रति मजबूत बनाता है और विधि के शासन की विश्वसनीयता को सुदृढ़ करता है।

4. जो मिश्रित प्रश्न इन पिटीशनों का निपटारा करेगा, वह इस प्रकार उद्भूत हुआ है। अनुच्छेद 137 में, संसद द्वारा बनाई गई किसी विधि के अथवा अनुच्छेद 145 के अधीन बनाए गए किसी नियम के उपबन्धों के अधीन रहते हुए इस न्यायालय के निर्णयों या आदेशों के पुनर्विलोकन के लिए उपबंध है। यहां पर हमारा सम्बन्ध इस न्यायालय द्वारा बनाए गए नियम से है। अनुच्छेद 145 के अधीन नियम बनाने की शक्ति न्यायालय की कार्यप्रणाली और प्रक्रिया के साधारण विनियमन तक सीमित है। विशिष्टतया, अनुच्छेद 145(1)(ख) और (ग) "अपीलें सुनने के लिए प्रक्रिया के बारे में तथा अपीलों सम्बन्धी अन्य विषयों के बारे में तथा इस न्यायालय द्वारा सुनाया गया कोई निर्णय अथवा दिया गया कोई आदेश जिन शर्तों के अधीन रह कर पुनर्विलोकन किया जा सकेगा, उनके बारे में तथा ऐसे पुनर्विलोकन के लिए प्रक्रिया के बारे मे" नियमों के रूप में ऐसे "न्यायिक" विधान के लिए प्राधिकृत करता है। ऐसे नियम किसी अन्य विधि के समान ही संविधान के भाग III की आज्ञाओं के अध्यधीन हैं और वे उस दशा में अस्तित्वहीन हो जाते हैं यदि वे संविधान के आदेशों और अभिनिषिद्धियों का अतिक्रमण करते है। प्रेम चन्द गर्ग बनाम एक्साइज कमिश्नर, उत्तर प्रदेश, इलाहाबाद[1] वाला मामला देखिए। हमारी लोकतन्त्रात्मक युक्ति में उच्चतम न्यायालय भी सर्वोच्च शक्ति नहीं है।

5. पुनर्विलोकन की मूलभूत शक्ति और उसके प्रयोग की प्रक्रिया किसी भी न्यायिक पद्धति के लिए उस दशा में आवश्यक हैं, यदि प्रथम निर्णय

[1] (1963) सप्लीमेंट (1) एस० सी० आर० 885.

में की अभेद दोषाक्षमता के किसी दावे के कारण विचार-शून्य हुए बिना, अज्ञानवश किए गए अन्याय को उस सीमा तक दूर करना है जितना कि व्यावहारिक रूप से सम्भव हो। यदि कार्यकरण की सीमाओं के भीतर गलती का पता चल जाता है तो अन्य मनुष्यों से अधिक न्यायाधीशों को भी ऐसे अन्याय को ठीक करना पड़ता है। इस प्रकार न्यायिक पुर्नविलोकन का मूल सिद्धान्त गूढ़ है। न्यायाधीश लर्नेड हैन्ड ने सभी न्यायाधीशों के लिए विनम्रता के उस महान नियम का अभिस्ताव किया था, जो क्रामवेल के प्राय: दोह गए शब्दों में इस प्रकार व्यक्त किया गया है :—

> "ओलिवर क्रामवेल ने डन-बार की लड़ाई से ठीक पहले यह कहा था कि मैं ईसामसीह के नाम पर आप से यह प्रार्थना करता हूं कि आप यह सोचें कि आप से भी गलती हो सकती है। न्यायाधीश हैंड ने कहा था कि मैं ये शब्द 'राष्ट्र के प्रत्येक गिरजाघर के, न्यायालय के मुख्य द्वार पर और प्रत्येक चौराहे पर लिखवाना चाहूंगा'[1]।"

ऐसी मनसिकतापूर्ण सहनशीलता के साथ ही यह न्यायालय अपने आदेशों की पुन: परीक्षा इस प्रकार करता हे जिससे कि न्यायिक अत्यंहकार से अबाधित रहकर अन्याय की घटनाओं को समाप्त किया जा सके।

6. इस न्यायालय ने प्रारम्भ से ही पुर्नविलकन के लिए नियम विरचित किए हैं, किन्तु कतिपय संशोधन द्वारा जो कि हाल ही में किया गया है, सामान्य अनुक्रम में न्यायालय में की जाने वाली मौखिक सुनवाई में कटौती कर दी गई है और वैवेकिक कांट-छांट के इस उपाय पर यह कह कर आक्षेप किया गया है कि वह न्यायिक न्याय का, जिसका यह न्यायालय सर्वोच्च अभिरक्षक है, निश्चित रूप से अतिक्रमण करता है। "यदि उच्चतम न्यायालय अभिरक्षक का अपना स्वरूप ही खो देता है, तो अभिरक्षा कौन करेगा?" निश्चित रूप से इस न्यायालत की प्रक्रिया अपने आप में उदाहरण होनी चाहिए और किसी भी प्रकार से उससे कम नहीं होनी चाहिए। इसलिए, प्रश्न यह है कि क्या पुर्नविलोकन के प्रक्रम पर और उच्चतम न्यायालय स्तर पर मौखिक सुनवाई को वैवेकिक बनाना इतना अशिष्ट है कि इस नियम की निन्दा यह कहकर की जा सकती है कि वह संविधान के विरुद्ध है। जब दलीलें दी जा रही थीं, तो उसके दौरान एक अन्य गम्भीर त्रुटि भी बतलाई गई अर्थात् यह कि नियम 2(2) द्वारा उन वादार्थियों के मुकाबले जो सिविल अधिकारिता

---

[1] लर्नेड हैन्ड कृत "दि स्पिरिट आफ लिबर्टी" का पृष्ठ 24.

1980(2) eILR(PAT) SC 15

का आह्वन करते हुए पुनर्विलोकन के लिए समावेदन करते हैं, ऐसे वादार्थियों के साथ जो दाण्डिक कार्यवाहियों में पुनर्विलोकन के लिए समावेदन करते है, द्वेषपूर्ण विभेद किया गया है। हम इस पर बाद में चलकर विचार करेंगे।

7. सम्बन्धित मूल नियम इस प्रकार है --

*"2(1) पुनर्विलोकन के लिए आवेदन पिटीशन द्वारा होगा और जिस निर्णय या आदेश के पुनर्विलोकन की ईप्सा की गई हो, उसके किए जाने की तारीख से तीस दिनों के भीतर वह फाइल किया जाएगा। उसमें पुनर्विलोकन के लिए आधार स्पष्ट रूप से उल्लिखित किए जाएंगे और जब तक कि न्यायालय अन्यथा आदेश न दें, उसके साथ ऐसे अधिवक्ता का, जो पुनर्विलोकन की ईप्सा करने वाले पक्षकार की ओर से मामले की सुनवाई के समय हाजिर हुआ हो या, जहां पक्षकार स्वयं हाजिर हुआ हो, वहां उसके साथ इस न्यायालय के के किसी अधिवक्ता का यह प्रमाण पत्र होगा कि उसे उचित आधारों का समर्थन प्राप्त है। वह प्रमाणपत्र तर्कसंगत राय के रूप में होगा।

(2) किसी सिविल कार्यवाही में पुनर्विलोकन के लिए कोई भी आवेदन तब तक ग्रहण नहीं किया जाएगा, जब तक कि पुनर्विलोकर की ईप्सा करने वाला पक्षकार पुनर्विलोकन के लिए पिटीशन फाइल

---

* अंग्रेजी में यह इस प्रकार है :

"2, (1) An application for review shall be by a petition and shall be filed within thirty days from the date of the judgment or order sought to be reviewed. It shall set out clearly the grounds for review and shall, unless otherwise ordered by the Court, be accompanied by a certificate from the Advocate who appeared at the hearing of the case for the party seeking review, or where the party appeared in person, from any advhcate of this Court, that it is supported by Proper grounds. The certificate shall be in the form of a reasoned opinion.

(2) No application for review in a civil proceeding shall be entertained unless the party seeking review furnishes to the Registrar of this Court at the time of

करते समय इस न्यायालय के रजिस्ट्रार को विरोधी पक्षकार के खर्च के लिए दो हजार रुपये तक की नकद प्रतिभूति न दे दे।

3. पुनर्विलोकन के लिए आवेदन, प्रारम्भिक सुनवाई तथा विरोधी पक्षकार को नोटिस जारी करने सम्बन्धी आदेश के लिए न्यायालय के समक्ष पेश किया जाएगा। ऐसी सुनवाई होने पर, न्यायालय या तो पिटीशन खारिज कर सकेगा या यह निदेश दे सकेगा कि विरोधी पक्षकार को नोटिस जारी किया जाए और ऐसे पक्षकार की सुनवाई किए जाने के लिए सुनवाई को स्थगित कर सकेगा। पुनर्विलोकन पिटीशन, यथासाध्य, उसी न्यायाधीश या न्यायाधीशों की उसी खण्ड न्यायपीठ के समक्ष पेश किया जाएगा जिसने वह निर्णय या आदेश किया था, जिसका पुनर्विलोकन किया जाना ईप्सित है।

4. जहां पुनर्विलोकन के लिए आवेदन करने पर, न्यायालय मामले में किए गए अपने पूर्ववर्ती विनियिश्चय को विधि या तथ्य की भूल के आधार पर उलट देता है या उपान्तरित करता है, वहां, यदि न्यायालय न्याय के हित में ऐसा करना उचित समझे तो आवेदन

---

filing the petition for review, cash security to the extent of two thousand ruppes for the costs of the opposite party.

3. An application for review shall be posted before the Court for preliminary hearing and order as to the issue of notice to the opposite party. Upon such hearing, the Court may either dismiss the petition or direct a notice to the opposite party and adjourn the hearing for such party to be heard. A petition for review shall as far as practicable be posted before the same judge or bench of judges that delivered the judgment or order sought to be reviewed.

4. Where on application for review the Court reverses or modifies its former decision in the case on the ground of mistake of law or fact, the Court may, if it thinks fit in the interests of justice to do so, direct the refund to the petitioner of the court fee paid on

1980(2) eILR(PAT) SC 15

पर संदत्त न्यायालय फीस, पूर्णत: या भागत जैसा कि वह उचित समझे, पिटीशनर को लौटाने के लिए निदेश दे सकेगा।''

तत्संबंधी संशोधित नियम इस प्रकार हैं।

*2(1) पुनर्विलोकन के लिए आवेदन पिटीशन द्वारा होगा और जिस निर्णय या आदेश के पुनर्विलोन की ईप्सा की गई हो या उसके किए जाने की तारीख से तीस दिनों के भीतर वह फाइल किया जाएगा। उसमें पुनर्विलोकन के लिए आधार स्पष्ट रूप से उल्लिखित किए जाएंगे।[1]

(2) कोई परिवर्तन नहीं।

(3) (जब तक कि न्यायालय द्वारा अन्यथा आदेश न किया जाए[2]) पुनर्विलोकन के लिए आवेदन कोई भी मौखिक दलीलें पेश किए बिना परिचालन द्वारा निपटया जाएगा किन्तु पिटीशनर अतिरिक्त लिखित दलीलें पेश करके अपने पिटीशन की अनुपूर्ति कर सकेगा। न्यायालय या तो पिटीशन खारिज कर सकेगा या यह निदेश दे सकेगा कि विरोधी पक्षकार को नोटिस जारी किया जाए। पुनर्विलोकन के लिए

---

the application in whole or in part, as it may think fit.

*2(1) An application for review shall be by a petition, and shall be filed within thirty days from the date of the judgment or order sought to be reviewed. It shall set out clearly the grounds for review.

(2) No change.

(3) (Unless otherwise ordered by the Court[2]) an application for review shall be disposed of by circulation without any oral arguments, but the petitioner may supplement his petition by additional written arguments. The Court may either dismiss the petition or direct notice to the opposite party. An application for review

[1] सा० का० नि० 387 तारीख 13 मार्च, 1978 द्वारा प्रतिस्थापित और तारीख 18 मार्च, 1978 को प्रवृत्त हुआ.

[2] सा० का० नि० प० 1024 तारीख 9 अगस्त, 1978 द्वारा जोड़ा गया और तारीख 19 अगस्त, 1978 से प्रवृत्त हुआ।

आवेदन यथासाध्य उसी न्यायाधीश या न्यायाधीशों की उसी खण्ड न्यायपीठ के समक्ष परिचालित किया जाएगा, जिसने वह निर्णय या आदेश जिसका पुनर्विलोकन किया जाना ईप्सित है, आदेश दिया था।

(4) कोई परिवर्तन नहीं।

(5) जहां किसी निर्णय या आदेश के पुनर्विलोकन के लिए कोई आवेदन किया गया हो और उसका निपटारा कर दिया गया हो, वहां उसी विषय के सम्बन्ध में पुनर्विलोकन के लिए कोई और आवेदन ग्रहण नहीं किया जाएगा।''

(हाल ही में अन्तः स्थापित)

प्रथम मुद्दे के सम्बन्ध में, महत्वपूर्ण अन्तर यह है कि अब मौखिक सुनवाई का किया जाना पिटीशनर का अधिकार नहीं रहा है, किन्तु वह खण्ड न्यायपीठ का ऐच्छिक अधिकार हो गया है तथा परिचालन पद्धति ने सार्वजनिक सुनवाई करने के ढंग का स्थान ले लिया है : नियमों की सूक्ष्म संवीक्षा का संक्षेप में अध्ययन करने से उन दलीलों पर प्रकाश पड़ेगा जिन पर जोर दिया गया है।

8. नियम का विश्लेषण करने पर और उनके निदेशों की तुलना करने पर हम यह पाते हैं कि अनियंत्रित पुनर्विलोकन कभी भी नियम नहीं रहा है। पुनर्विलोकन को उचित आधारों का समर्थन प्राप्त होना चाहिए अन्यथा प्रत्येक असंतुष्ट वादार्थी नेमिक पुनर्विलोकन द्वारा अपनी हार का बदला ले सकता है और इस प्रकार अनिर्णीत निर्णय पूंजी में प्रारम्भिक सुनवाई या सावधानीपूर्वक अन्तिम सुनवाई के इंतजार में लगे

---

shall as far as practicable be circulated to the same judge or bench of judges that delivered the judgment or order sought to be reviewed.

4. No Change.

5. Where an application for review of any judgment and or order has been mad and disposed of, no further application for review shall be entertained in the same matter."

(Newly inserted)

हुए मामलों की लम्बी कतार के निपटारे में बाधा पहुंच सकती है। इस बात पर बल देना बहुत ही युक्तियुक्त है कि पुनर्विलोकन के लिए उचित आधारों का अस्तित्व, न्यायालय का,और समय के लिए जाने से पूर्व उत्तरदायित्वपूर्ण तरीके से सिद्ध किया जाना चाहिए। इस प्रकार मूल नियम में अधिवक्ता द्वारा, जो मामले में पहले हाजिर हुआ था, इस आशय का प्रमाणपत्र अपेक्षित था। यहां पर, काउन्सेल न्यायालय के अधिकारी के रूप में कार्य करता है तथा पुराने नियम 2(1) की आज्ञा के अधीन वह पुनर्विलोकन की उपयुक्तता का प्रमाणपत्र देता था या इनकार करता था। यदि इस प्रकार प्रमाणपत्र दिया जाता था, तो प्रारम्भिक मौखिक सुनवाई होती थी। ऐसी मौखिक सुनवाई के पश्चात् न्यायालय दूसरे पक्षकार को नोटिस देता था या पिटीशन खारिज कर देता था। यदि प्रमाणन की प्रक्रिया ठीक तरह से चलती और मूल निर्णय की वास्तविक गलतियां तथा उसे बिगाड़ने वाली स्पष्ट भूलें पुनर्विलोकन के निर्बन्धित आधार होती; तो यह पद्धति बहुत ही उचित थी। किन्तु जैसा कि बताया जा चुका है, प्रमाणन में शिथिलता और पुनर्विलोकन विषयक आवेदन फाइल करने में हुई शिथिलता से न्यायालयों में अवांछित पुनर्विलोकन विषयक पिटीशनों की भीड़ लग गई। निर्णयपंजी के संकट ने; ऐसे उपयुक्त व्यक्तियों को जो सुनवाई के लिए अपनी बारी का इंतजार करते रहते थे, मुकदमे में मिलने वाले न्याय पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता था। अन्यथा भी पुनर्विलोकन के लिए झूठे समावेदन के परिणामस्वरूप सर्वोच्च न्यायालय द्वारा भी मुकदमों में निर्णयों को अन्तिम रूप दिए जाने के कार्य में जुए का तत्व आ गया था और इससे अनिश्चितता की स्थिति पैदा हो गई थी। यदि प्रत्येक पराजित पक्षकार पुनर्विलोकन करके भाग्य आज़माना चाहता हो, और यदि संयोगवश विरोधी पक्षकार को कुछ मामलों में सूचना जारी कर दी गई तो निस्सन्देह विरोधी पक्षकार को बहुत ही अधिक खर्च उठाना पड़ेगा और वह परेशानी में पड़ जाएगा। यदि ऐसा खेल प्रचलित हो जाएगा तो निर्णय की अन्तिमता की पवित्रता जो न्याय के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण है, दूषित हो जाएगी। और अनुभव से यह प्रतीत होता है कि ऐसा खेल आम हो गया है। गुणताहीन पुनर्विलोकन विषयक पिटीशनों की भीड़ ने, जिन्हें सुनवाई करके खारिज कर दिया गया, लोक न्याय के प्रवाह में बाधा पहुंचाई है। इस न्यायालय को **सौ० चन्द्रकान्ता और एक अन्य बनाम शेख हबीब**[1] वाले मामले में इसी प्रकार की समस्या का सामना करना पड़ा

---

[1] [1975] 3 उम० नि० प० 575 = [1975] 3 एस० सी० आर० 933

था तथा न्यायालय ने पुर्नविलोकन विषयक पिटीशन खारिज करते समय यह मत व्यक्त किया था कि भयंकर गलतियों को ठीक करने के लिए मिले अवसर का तोड़-मरोड़कर उपयोग, न्यायालय के अपीली या अन्य निर्णय के विरुद्ध उन्हीं आधारों पर, जो पहले नामजूर कर दिए गए थे, उसी न्यायालय में नए सिरे से अपील करने के लिए किस प्रकार किया जा रहा है। उक्त मामले में इस न्यायालय ने निम्नलिखित मत व्यक्त किया था —

> "निर्णय का पुनर्विलोकन गम्भीर बात है और अनिच्छा से भी उसका सहारा लेना उस समय ही उचित हो सकता है जहां स्पष्ट लोप या प्रत्यक्ष गलती या गम्भीर गलती पूर्ववर्ती प्रक्रम में न्यायिक चूक के कारण हो गई हो। पुरानी और न मानी गई दलीलों को दूसरे काउन्सेल द्वारा अप्रभावशील आधार को या महत्वहीन स्वरूप की छोटी-मोटी गलतियों को दोहराना मात्र दूसरा दौर शुरू करने के लिए स्पष्ट रूप से ही अपर्याप्त है। इन तत्वों का कड़ाई से पालन काउन्सेल द्वारा मंजूरी दिए जाने पर जोर देने के लिए तर्कयुक्त है जो आदतन नेमिक बात नहीं होनी चाहिए। यह बात न तो उस न्यायालय के लिए उचित है जिसने विनिश्चय किया और न इससे जनता के कीमती समय के प्रति जागरुकता का ही पता चलता है जिसके बहुत से मुकदमे निपटाए जाने के लिए क्रम संख्या अनुसार लम्बित हैं। काउन्सेल को पुर्नविलोकन के लिए सरलता से तैयार नहीं हो जाना चाहिए और उसी लड़ाई को फिर से लड़ना शुरू नहीं कर दिया जाना चाहिए जो लड़ी गई थी और जिसमें वह हार चुका हो। हमें पूरा विश्वास है कि न्यायालय एवं अधिवक्तागण संयुक्त रूप से इस बात के प्रति सजग हैं कि न्यायिक समय अधिकतम उपयोग किए जाने के लिए बचाया जाए। हमें यह कहते हुए दुख है कि पुर्नविलोकन के लिए पारपत्र के रूप में अक्सर दौहराई जाने वाली प्रक्रिया का यह एक दुर्भाग्यपूर्ण उदाहरण है। तब हमने जो कुछ सुना था अब सिवाय उन मुद्दों पर जो पहले हमारे समक्ष रखे गए थे कुछ विनिर्णयों के अतिरिक्त कुछ भी नया नहीं कहा गया है। यह हो सकता है कि जैसा कि काउन्सेल दलील देने के बाद अब जोर दे रहे हैं कि विशेष इजाजत न देने वाले हमारे आदेश में दूसरा मार्ग अपनाया गया होता, वर्तमान प्रक्रम एकदम प्रारम्भिक प्रक्रम नहीं है किन्तु पूर्ववर्ती आदेश का पुनर्विलोकन है जो मामूली तौर पर अन्तिम होता है।"

ये मत पुनर्विलोकन से सम्बन्धित संलक्षणों के अस्तित्वद्योतक थे; इसलिए इनके उपचार की आवश्यकता थी। तथा ये संशोधित नियम इन पूर्ण-लक्षणों की स्थिति में, काउन्सेल के प्रमाणन के स्थान पर न्यायालय द्वारा की जाने वाली संविक्षा रखकर, परिचालन द्वारा प्रारम्भिक न्यायिक संवीक्षा करने का सूत्रपात करके, अंधाधुंध पुनर्विलोकन की बुराई दूर करने के लिए सप्रयोजन बनाए गए थे—जोकि न्यायालय पर अतिरिक्त, किन्तु आवश्यक भार था। यदि पुनर्विलोकन विषयक पिटीशन और लिखित दलीलों से (जिसके लिए उपबन्ध किया गया था) न्यायालय का यह समाधान हो जाता है कि प्रथम-दृष्टया किसी तात्विक गलती के कारण न्याय विफल हुआ है या पूर्ववर्ती निर्णय या आदेश की वैधता नष्ट हुई है, तो मामला न्यायालय में मौखिक सुनवाई के लिए पेश किया जाएगा, अन्यथा नहीं। अमरीकन न्यायिक भाषा में "सर्टवर्दीनेस" को "प्रमाणपत्र दिए जाने के योग्य होना" (सर्टिफिकेटवर्दीनेस) कहा गया है और इस संशोधन द्वारा प्रमाणपत्र देने का भार काउन्सेल पर से हटाकर न्यायालय पर डाल दिया गया है। तत्वतः और सारतः संशोधित नियम का यही तर्काधार है।

9. एक प्रक्रम पर काउन्सेल ने यह प्रश्न उठाया कि क्या संशोधन में की गई उपधारणाओं को न्यायोचित ठहराने के लिए प्रोत्साहनार्थ प्रत्यक्ष अनुसंधान किया गया था; यह कि न्यायालय के पुनर्विलोकन में नष्ट होने वाले समय की बारम्बारता और प्रकृति के बारे में तथ्य और आंकड़े तथा अनेक अन्य सम्बद्ध पहलू उपलभ्य थे। इस समय हमारे समक्ष ऐसी कोई सामग्री नहीं है। यह स्वीकार करना उचित ही है कि विधान के प्रारम्भ के पूर्व लोक समस्याओं का अनुसंधान और अध्ययन करने की वैज्ञानिक पद्धति एक बहुत ही इच्छित लक्ष्य है और हमारे देश में दुर्भाग्यवश ऐसा नहीं होता तथा न्यायालय- प्रबन्ध, न्यायिक समय का, अधिकतम उपयोग करने के प्रति विशेष निर्देश करते हुए जो बहुत ही राष्ट्रीय महत्व का विषय है—एक समस्या है जिसका अस्तित्व वर्तमान में न्यायिक अनुसंधान के क्षेत्र से परे है। जहां जागरूकता का अभाव हो, वहां तदर्थवाद अपरिहार्य होता है। किन्तु यहां पर ऐसे न्यायाधीशों का, जिन्होंने संशोधन पर विचार किया था और उसके बारे में विनिश्चय किया था, अनुभव सम्बन्धी साक्ष्य, तथा पुनर्विलोकन विषयक पिटीशनों के बारे में किए गए विनिश्चयों से निकाला गया निष्कर्ष उस प्रतिपादना की पुष्टि करता है या प्रत्यक्ष अनुसंधान का मार्ग प्रास्तुत करता है।

10. जैसी भी स्थिति हो, हमारा यह समाधान हो गया है कि जिस प्रकार से परिवर्तन किया गया है, उसको न्यायोचित ठहराने के लिए इस न्यायालय के दैनिक अनुभव में पर्याप्त औचित्य मौजूद है। इस पर भी व्यावहारि विवशताओं के बावजूद भी सांविधानिक सिद्धान्तों का उल्लंघन नहीं किया जा सकता। सर्वोपरिता, सर्वोपरिता है और अत्यावश्यकता कैसी ही क्यों न हो, वह सर्वोपरिता का स्थान नहीं ले सकती। तब सांविधानिकता के वे कौन-से सर्वोपरि सिद्धान्त हैं जिनका अतिक्रमण इस संशोधित नियम ने किया है ? सार्वजनिक सुनवाई का अभाव और मौखिक उपस्थापन ऐसी बुराईयां हैं जिनको काउन्सेल ने अपने तर्कों में स्पष्टत की है।

11. नियम 2(1) को अविधिमान्य ठहराने के लिए दो बड़ी दलीलें दी गई थीं। मौखिक उपस्थापन और सार्वजनिक सुनवाई से दूर हटना इस मूल सिद्धान्त को नष्ट कर देता है कि लोक न्याय सार्वजनिक स्थान से ही किया जाना चाहिए, न कि गुप्त सभा में, यह कि सुनवाई में उस दशा में औचित्य के प्रति उदासीनता आ जाती है, यदि मौखिक प्रभावशीलता परिचालन प्रक्रिया द्वारा निषिद्ध कर दी जाती है, जो न्यायालों के कक्षों में सुनी गई श्रव्यदृश्य बहस की बजाय, जो कि न्याय का एक लक्षण है, ऐसे नौकरशाही प्रकोष्ठों के जो फाइलों में लदे रहते हैं, अकेलेपन के बहुत अधिक अनुकूल है। गोपनीयता और परिचालन न्यायिक प्रक्रिया को अस्वीकार करते हैं। पुनर्विलोकन एक न्यायिक कार्यवाही है और उसकी सुनवाई को प्राप्त होने की दृष्टि से, प्रक्रियात्मक विधिशास्त्र के आवश्यक लक्षणों से भिन्न नहीं होना चाहिए; कुछ न्यायाधीश दलीलों की सुनवाई करने की पद्धति के प्रति कितना ही व्युत्साही क्यों न हों, जो हमारी न्याय-व्यवस्था का मर्म है। काउन्सेल के तर्कों में विषमरूपी उपान्तरणों सहित इस पुन: प्रचलित सिद्धान्त पर बल दिया गया है।

12. हमें प्रारम्भ से ही यह बात बिल्कुल स्पष्ट कर देनी चाहिए कि "दूसरे पक्षकार को भी सुनो" वाला सिद्धान्त हमारी न्यायिक पद्धति का आधारिक गुण है। प्रभावित पक्षकार की सुनवाई करना हमारे सांविधानिक व्यवस्था की भावनाओं में बहुत ही गहराई से निहित है। यह प्रश्न, विशेष "पुनर्विलोकन" की स्थिति में सुनवाई के स्तर, अन्तर्वस्तु और स्वरूप के बारे में है। प्रसंगवश, हम मौखिक सुनवाई और न्यायालय की प्रक्रिया में उसके महत्व, उसके लघुरूपकरण की सम्भावनाओं और कतिपय प्रवर्गों में लिखित दलीलों द्वारा उसके प्रतिस्थापन के बारे में विचार कर सकते हैं।

13. हम इस बात से सहमत हैं कि लोक सुनवाई सर्वोपरि महत्व की है। भारतीय गणतन्त्र में न्याय खुलेआम किया जाता है और यदि न्यायाधीश एकान्त में चर्चा करते हैं और न्याय चाहने वालों के प्रतिनिधियों के रूप में, न्यायालय में, विधिज्ञ-वर्ग की सुनवाई के बिना अन्तिम आदेश जारी कर देते हैं, तो विधिशासन एक रहस्यमय जाल में उलझ जाएगा और गाउन पहने हुए न्यायाधीशों द्वारा जारी किए गए प्रच्छन्न आदेशों से न्याय के नाम पर कलंक लग जाएगा। इस बात से भी सहमत हैं कि मौखिक वकालत का न्याय सम्बन्धी प्रक्रिया में अस्थायी महत्व है जिसकी बराबरी बहुत ही प्रभावशाली पक्षकार भी नहीं कर सकता तथा बहुत ही सतर्क न्यायाधीश उसके बगैर विचार नहीं कर सकता। जटिल विधिक तर्क का बौद्धिक ताना-बाना तथा नाजुक तथ्यों पर बल देने की आवेशपूर्ण कला प्रायः कागज और कलम की कला से परे की बात हो सकती है। इस बात में कोई संविवाद नहीं है कि परिचालन द्वारा निपटारा, जो कि सचिवालय का चलन है, न तो सामान्य न्यायिक तकनीक हो सकता है और न ही मौन टिप्पणियां न्यायाधीश और अधिवक्ताओं के तर्कों का स्थान ही ले सकती हैं। हमें एक बात अवश्य ही स्पष्ट करनी चाहिए। न्यायिक संदर्भ में "परिचालन" से केवल न्यायिक मंत्रणा में चर्चा करके परिचालन अभिप्रेत है, न कि न्यायालय में मौखिक तर्कों के माध्यम से परिचालन। न्यायाधीशों को संशोधित नियम के अधीन भी, अवश्य ही परस्पर मिलना चाहिए, सामूहिक रूप से चिंतन करना चाहिए और निष्कर्ष पर पहुंचना चाहिए। टिप्पणियों सहित, फाइलों के संचलन से समस्या हल नहीं हो सकती। अन्यथा, पारस्परिक अभिप्रेरणा, तर्कयुक्त विसम्मति और संयुक्त निर्णय विफल हो जाएगा और मौखिक तर्क के अभाव में राय के मशीनीकरण और अनुपस्थिति में मतों के प्राख्यान के कारण न्यायिक प्रज्ञा उस मानसिक प्रत्युर्वरीकरण से वंचित हो जाएगी जो न्यायपीठ के विनिश्चय के लिए आवश्यक है। विद्वान महासालिसिटर ने जोर देकर यह दलील दी है कि वे इस मुद्दे पर विरोधी काउन्सेल से सहमत हैं। हम सहमत हैं।

14. मुख्य प्रश्न भिन्न है। क्या इससे यह अभिप्रेत है कि, जैसा नए नियम में उपबन्ध किया 'गया है, लिखित तर्क प्राप्त करके और मंत्रणा स्थल पर उन्हें पढ़ लेने और उन पर चर्चा करने से, जो कि न्यायपीठ द्वारा औपचारिक रूप से न्यायालय में बैठक करने और मौखिक दलीलों की सुनवाई करने से भिन्न है, जो कार्य कर दिया गया है, वह इतना मनमाना,

1980(2) eILR(PAT) SC 15

अनुचित और अयुक्तियुक्त नाटक है कि उसमें असांविधानिकता की झलक मिलती है । उच्चतम न्यायालय के स्तर पर पुनर्विलोकन विषयक पिटीशनों के मामले में इस भ्रामक विकृति को गम्भीर रोग मानकर समाप्त कर दिया जाना चाहिए ।

15. हमें कोई निन्दा किए बिना वास्तविकता पर ध्यान देना चाहिए । जिस नियम को चुनौती दी गई है, वह आरम्भिक सुनवाई को न तो अपनी परिधि में लेता है और न ही वह उसे लागू होता है । वह पुनर्विलोकन की स्थितियों से सम्बन्धित है । इस प्रतिपादना के परिणामस्वरूप, पूर्ववर्ती न्यायिक सुनवाई और न्यायिक आदेश विद्यमान हैं । वास्तव में यदि न्यायपीठ के समक्ष पूर्ण रूप से मौखिक सुनवाई पहले ही हो चुकी हो, तो गोपनीय रूप से निपटारा करने का खतरा समाप्त हो जाता है । जो बात चाही गई है, वह प्रथम आदेश का पुनर्विलोकन या उस पर दुबारा विचार करना है । क्या यह दुबारा विचार सर्वांगीण होना चाहिए ? कभी नहीं । न्यायालय का ध्यान प्रथम आदेश की स्पष्ट, गम्भीर गलतियों तक ही सीमित रहना चाहिए । अधिक न्यायालय-फीस का संदाय करके, अंधाधुंध, दुबारा विचार नहीं करवाया जा सकता । हम अधिवक्ताओं में से एक अधिवक्ता द्वारा किए गए इस आश्चर्यजनक अभिवाक् को नामंजूर करते हैं कि चूंकि पिटीशनर ने पुनर्विलोकन के लिए न्यायालय-फीस संदत्त की थी, इसलिए उसे सम्पूर्ण स्थिति को अपनी परिधि में लेते हुए जी भरकर मौखिक सुनवाई की संरक्षा प्राप्त करने का अधिकार था ।

16. यदि कठिनाईयों से भरी न्यायिक प्रक्रिया को समय नष्ट करने का साधन नहीं बनाना है, तो पुनर्विलोकन को अवश्य ही निर्बन्धित किया जाना चाहिए । उसकी परिधि, अन्तर्वस्तु और कार्य-पद्धति को सीमित करने के कई तरीके हैं । जैसा कि सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 47 के नियम 1 में अन्तर्विष्ट है, कतिपय विशेष आधारों तक सीमित रहना एक तरीका है । काउन्सेल के पुनर्विलोकनार्थ तर्कसंगत योग्यता-प्रमाणपत्र की अपेक्षा होना एक अन्य तरीका है । मौखिक दलील पेश करने में काउन्सेल की सुनवाई करने के लिए प्रथमदृष्टया वैध आधारों के होने की बात का पता लगाने के लिए न्यायिक संवीक्षा एक तीसरा तरीका है । प्रथम तरीका अच्छा है और वह अपनाया जा रहा है । द्वितीय तरीके का प्रयोग किया गया था और वह, अप्रभावी पाया गया था तथा तीसरे तरीके का प्रयोग किया जा रहा है । विधायी नीति प्रयोगात्मक है, क्योंकि स्वयं जीवन ही प्रयोग और गलतियों से

भरा साहसपूर्ण कार्य है। इस तीसरे आनुकल्पिक तरीके के बारे में कौन-सी बात दुःखद है ? न्यायाधीश संवीक्षा करते हैं— वे ही न्यायाधीश जिन्होंने एक बार मौखिक तर्क सुने हैं और जो मामले से परिचित है— और, यदि वे उपेक्षापूर्वक कार्य नहीं करते हैं, तो वे उस दशा में यदि उन्हें वैध आधार मिलते हैं, न्यायालय में सुनवाई के लिए निदेश देते हैं। यदि कोई (वैध) आधार हैं, तो मौखिक सुनवाई होती है। बात ऐसी नहीं है मानो कि मौखिक वकालत पूर्णतया समाप्त कर दी गई है। यदि प्रारम्भिक न्यायिक संवीक्षा में पुनर्विलोकन के लिए कोई कारण नहीं मिलता है, केवल तभी मौखिक सुनवाई निषिद्ध है। न्यायिक प्रक्रिया सर्कस या थियेटर नहीं है जहां कि दर्शक 'एक बार फिर, एक बार फिर' (वन्स मोर, वन्स मोर) कहकर तालियां बजा सकते हैं। जब इस पद्धति पर मुकदमों को शीघ्रता से फैसले के लिए जोर डाला जा रहा है, तो न्यायिक कामकाज का प्रबन्ध लिखित पक्षकार के आधार पर संवीक्षा द्वारा निरर्थक पुनर्विलोकनों को प्रतिषिद्ध करने की बात को न्यायोचित ठहराता है। न्याय करने के लिए भी इंजीनियर की भांति कार्य करने की आवश्यकता है।

17. कई अधिकारिताओं में, मौखिक दलीलें और सार्वजनिक सुनवाईयां समान परिस्थितियों में नामंजूर की जाती हैं। इंग्लैण्ड और अमरीका में जहां मौखिक वकालत से छुटकारा पा लिया गया है, वहां वरिष्ठ न्यायालयों में 'सुनवाई' के कतिपय विस्तृत प्रक्रमों को कम या समाप्त कर दिया गया है। न्यायपीठ द्वारा सुनवाई किए बिना, न्यायाधीशों के बीच मंत्रणा करके इजाज़त लेने के लिए प्रस्तुत किए गए पिटीशनों का निपटारा भी प्रचलित है।

18. जैसा कि श्री गर्ग ने ठीक तौर से ही इस बात पर बल दिया है कि इस न्यायालय ने सार्वजनिक सुनवाई को विशेष महत्व दिया है तथा न्यायालय न तो कोई गुफाएं हैं और न ही मठ बल्कि, वे ऐसे न्यायतीर्थ हैं, जहां तक न्याय प्राप्त करने की सार्वजनिक प्रार्थना के लिए सभी लोगों की पहुंच है। इस मूलभूत प्रतिपादना के समर्थन में विनिर्णयों को प्रोद्धृत करने की आवश्यकता नहीं है। किन्तु प्रत्येक न्यायिक प्रक्रिया के सार्वजनिक प्रदर्शन की आवश्यकता नहीं है। जब न्यायाधीश विचार-विमर्श करने के उद्देश्य से मंत्रणार्थ मिलते हैं, तो उसे राष्ट्र भर में लगे हुए टेलीविजन पर दिखाने की आवश्यकता नहीं है। सुनवाई का अधिकार एक सारभूत बात है, किन्तु सुनवाई का अर्थ किसी विवाद के सम्बन्ध में किसी व्यक्ति को अपना दृष्टिकोण

1980(2) eILR(PAT) SC 15

पेश करने के लिए दिए जाने वाले उचित अवसर से अधिक नहीं है और उसके बाद निष्पक्ष न्यायाधीश उसकी न्यायोचित सुनवाई करते हैं। हमें इस प्रक्रिया को काल्पनिक नहीं बनाना है और न ही उसे खींचतान कर इतना बढाना ही है जिससे कि उस पर विराम लग जाए। किसी बात को लिखित या मौखिक रूप में पेश किया जा सकता है जो न्याय की स्थिति पर निर्भर है। जहां मौखिक रूप से कह कर किसी बात को मनवाने की आवश्यकता हो, वहां उसे अपवर्जित करना अनुचित है और इसीलिए वह मनमाना भी है। किन्तु जहां मौखिक सुनवाई उतनी आवश्यक नहीं है, वहां उसको अपवर्जित करना अहितकर नहीं है। जो बात महत्वपूर्ण है, वह पेश किए गए मुद्दों पर प्रशिक्षित प्रज्ञापूर्ण निष्पक्ष और खुले मस्तिष्क के प्रयोग की गारंटी है। ऐसे न्यायाधीश जिसे रुचि नहीं है, मौखिक सुनवाई के बोझिलपन से उकता कर ऊंघ सकता है जबकि लिखित तर्कों की गहराई से जांच करने वाला सतर्क न्यायाधीश महत्वपूर्ण पहलुओं पर विचार कर सकता है। यह कहना कि न्यायालय में केवल मौखिक तर्क ही दिए जाने चाहिएं या लिखित तर्क ही पेश किए जाने चाहिए, उतना ही गलत है जितना कि न्यायाधीशों का इस बात के प्रति व्युत्साह प्रकट करना कि न्यायालय में ही तर्क दिए जाने चाहिए। प्रायः न्यायाधीश ही मौखिक तर्क की मांग करता है क्योंकि वह उनके लिए बहुत अधिक सहायक होता है। काउन्सेल की मौखिक बहस के बिना महाकाय पेपरबुक के आधार पर ही निःसहाय छोड़ दिए जाने से न्याय पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। अतिवादिता विधि और जीवन में असफल होती हैं।

19. हम इस बात से सहमत हैं कि न्यायिक प्रक्रिया का सामान्य नियम मौखिक सुनवाई है और उसका लोप किया जाना अप्रायिक अपवाद है इस समय हमारा सम्बन्ध उच्चतम न्यायालय में पुनर्विलोकन से सम्बन्धित नियम की शक्तियों से है। बहुत बड़ी संख्या में उपस्थित जनता के समक्ष पूर्ण सुनवाई और मौखिक बहस समाप्त हो गई है। यह एक दूसरा अनुसन्धान है। यहां पर लिखित तर्क दिए जाते हैं। सम्पूर्ण कागज-पत्र न्यायाधीशों के पास होते हैं। न्यायाधीश स्वयं ही वे व्यक्ति होते हैं जिन्होंने पहले मौखिक बहस सुन रखी होती है। तथापि यह बहुत से न्यायाधीशों की बात है, न कि केवल एक कि। इसके अतिरिक्त यदि, प्रथमदृष्टया, आधार सिद्ध कर दिए जाते हैं। तो आगे मौखिक सुनवाई के लिए निदेश दिया जाता है। यह मानते हुए कि सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों में आधारिक सद्भावना मौजूद रहती है, यह तर्क देना असम्भव है कि न्यायालय में मौखिक तर्कों के बारे में आंशिक

1980(2) eILR(PAT) SC 1

पूर्वानुमान या तो अनुचित या अयुक्तियुक्त है, या इतना दूषित है कि उससे नैसर्गिक न्याय का अतिक्रमण होता है तथा वह हमारे सांविधानिक विधिशास्त्र की सुविधाओं से वंचित करता है। इस बात को सदैव स्मरण रखना चाहिए कि पुनर्विलोकन उन्हीं तर्कों की दूसरी बार सुनवाई करना नहीं है जिन पर एक बार विचार किया जा चुका है और जिन्हें अस्वीकृत किया जा चुका है। अस्वीकृति गलत हो सकती है, किन्तु कोई चारा नहीं है। विसम्मत अल्पमत अपने निर्णयों में प्रबल बहुमत को गलत मानता है, किन्तु इस सम्बन्ध में कुछ किया नहीं जा सकता।

20. जहां कि मूल अधिकारों से सम्बन्धित कार्यवाही का पुनर्विलोकन ईप्सित हो, वहां भी किसी आरम्भिक या प्रथम सुनवाई तथा पूरी तरह से सुनवाई किए जाने के पश्चात् पहले ही पारित आदेश पर दुबारा विचार करने के या पुनर्विलोकन के बीच समालोचनात्मक प्रभेद के प्रति निर्देश करना अप्रासंगिक नहीं होगा। **लालाराम** बनाम **भारत का उच्चतम न्यायालय और अन्य**[1] के मामले में इस न्यायालय ने मूल अधिकारों के प्रवर्तन के लिए किए गए मूल आवेदन के और उसमें किए गए आदेश के पुनर्विलोकन के लिए किए गए आवेदन के बीच के आवश्यक प्रभेद पर जोर दिया था। उस मामले में निम्नलिखित मत व्यक्त किया गया था :—

> "पुनर्विलोकन पिटीशन का मुख्य प्रयोजन मूल अधिकार का प्रवर्तन कराना नहीं है, किन्तु अभिलेख की किसी स्पष्ट गलती के कारण या ऐसे किसी अन्य कारणों से दूषित किसी आदेश पर पुनर्विचार करना है। किन्तु यह कहा गया है कि किसी पूर्वतर आदेश पर पुनर्विचार करने का प्रभाव मूल अधिकार का प्रवर्तन कराने के लिए किए गए उसके आवेदन को प्रत्यावर्तित करना होगा, और इसीलिए वस्तुतः और सारतः ऐसे आदेश के पुनर्विलोकन के लिए किया गया आवेदन मूल अधिकार का प्रवर्तन कराने के लिए किया गया आवेदन भी है। यह हो सकता है कि यह किसी आदेश पर पुनर्विचार करने का परिणाम हो, किन्तु आवेदन स्वयं जैसा कि हम कह चुके हैं, मूल अधिकार का प्रवर्तन कराने के लिए नहीं है।"

21. क्या मौखिक वकालत के विलोपन और न्याय के करने के उद्देश्य के बीच कोई सम्बन्ध है? काउन्सेल ने यह कहा है कि ऐसा कोई

---

[1] [1967] 2 एस० सी० आर० 14.

सम्बन्ध नहीं है। हम इस बात से सहमत नहीं हैं। उद्देश्य न्यायालय के समय का अधिकतम उपयोग करना है तथा पुनर्विलोकन पिटीशनों का निपटारा द्रुत गति से करना है। स्वयं न्यायाधीशों द्वारा न्यायालय की बैठकों के बाहर के समय के दौरान न्यायाधीशों पर पुनर्विलोकन के कागजपत्रों को पढ़ने और उस पर चर्चा करने के लिए सहमत होकर भारी भार डाले जाने के बावजूद भी न्यायालय के समय में अनुचित हस्तक्षेप किए बिना, पुनर्विलोकन विषयक पिटीशनों के निपटारे में स्पष्ट तेजी आई है। उसी प्रकार से यह बात स्पष्ट है कि न्यायपीठें मामलों की सुनवाई के लिए और अधिक समय देने में समर्थ हो गई हैं। संक्षेप में, परिचालन पद्धति जो कि न्यायालय में न्यायाधीशों के समय की बचत और पुनर्विलोकन विषयक पिटीशनों के शीघ्र निपटारे के उद्देश्यों से सम्बद्ध है, लाभ स्पष्ट हैं। उन्हीं न्यायाधीशों की, जिन्होंने मामले की सुनवाई प्रथमत: केवल कुछ मिनटों तक या उससे कुछ अधिक समय तक की थी, पुनर्विलोकन न्यायपीठों का गठन करना, और तब नियमित न्यायपीठों को विसर्जित करना और उनकी पुनर्व्यवस्था करना, तब जबकि पुनर्विलोकन विषयक पिटीशनों में पहले की ही बातें व्यर्थ में दोहराई जाती है' ऐसा न्यायिक कृत्य है जिसे न्यायालय वहन नहीं कर सकता। नियम तर्कसंगत है तथा क्षति सीमित है।

22. बोले गए शब्दों का गहरा प्रभाव, सुकरातीप्र क्रिया की शक्ति तथा वकीलों और न्यायाधीशों के बीच के संवाद की तात्कालिक स्पष्टता इतने महत्वपूर्ण हैं कि उनका त्याग नहीं किया जा सकता, यद्यपि कोई बुरा अधिवक्ता किसी अच्छे मामले को निस्सन्देह उस दशा में बिगाड़ सकता है, यदि न्यायाधीश अपने विनिश्चय के लिए केवल मौखिक तर्कों का ही अवलम्ब लेते हैं। सतर्क न्यायाधीशों के समक्ष प्रस्तुत लिखित पक्षसार मौखिक दलीलों के शीघ्र समाप्त होने वाले प्रभाव की अपेक्षा अधिक गहरे सम्प्रेषण की निश्चित प्रक्रिया हो सकती है। और, नवीनकुशलता -प्रभावी पक्षसार का तैयार किया जाना जो वस्तुत: संक्षिप्त बहुत प्रभावीशाली और अत्याधिक ज्ञानवर्धक हो लेखन की ऐसी कला है जो विशेषकर तब अर्जित किए जाने योग्य होती है, जबकि विधि-व्यवसाय में ऐसे बहुत से प्रतिभाशाली वकील होते हैं जो गोल्डस्मिथ के समान होते हैं जो बहुत ही उच्च साहित्य लिखता था, किन्तु बातचीत करने में बहुत ही साधारण था। भारत न तो इंग्लैण्ड है और न ही अमरीका तथा न्याय सम्बन्धी हमारी तकनीक का रूप हमारी आवश्यकताओं और स्रोतों के अनुसार होना चाहिए। वास्तव में, इस न्यायालय में काउन्सेलों ने सुसंगत कारणों से लिखित दलीलों

और मौखिक रूप से पेश किए गए मधुर तर्कों का अत्याधिक अवलम्ब लेना प्रारम्भ कर दिया है। न्यायालय अकेले ही कभी भी कुछ नहीं कर सकता। वकीलों को सहयोग करना चाहिए और उत्प्रेरणा देनी चाहिए।

23. परिचालन सम्बन्धी इस नियम में खुली चर्चा से दूर भागने का कोई प्रयत्न नहीं है। गुप्त बैठकें, सार्वजनिक सुनवाई का अपवर्जन और गुप्त मंत्रणा न्यायिक प्रक्रिया के लिए होता है। पुनर्विलोकन से पूरी तरह से की गई पूर्वतर सुनवाई विवक्षित है तथा यदि यह उचित हो, तो उससे भविष्य में की जाने वाली आगे की सुनवाई भी विवक्षित है। प्रत्येक उपाय को ऐसे परिप्रेक्ष्य में देखा जाना चाहिए, जो संकेन्द्रण से परे न हो। यह भय कि न्यायालय, गुप्त प्रक्रिया द्वारा सार्वजनिक सुनवाई की परम्परा को समाप्त कर सकता है, केवल एक काल्पनिक या अनुदारतापूर्ण भय है।

24. अन्य अधिकारिताओं में जो हमारे न्यायशास्त्री अंग्रेजों के समय से ही धारण करते हैं, यह पद्धति एक प्रचलित पद्धति है। मौखिक वकालत और लिखित तर्कों का संतुलन करना उतना ही सिद्धान्त का विषय है जितना कि व्यवहारवाद का। मूल सिद्धान्त के बारे में समझौता हुए बिना, वास्तविकताओं की अनिवार्यता किसी विशिष्ट स्थिति में तर्कसंगत हल प्रदान करती है। सापेक्षता के संसार में कोई बात अबात्यान्तिक नहीं होती है। न्यायाधीशों के सीमित समय पर मुकदमों का दबाव, अच्छी तरह विचार करने का गम्भीर उत्तरदायित्व देश के ऐसे महत्वपूर्ण विवाद्यकों पर जिन्हें न्यायालय की कार्य-सूची में स्थान मिल गया है, ऐसा गहन अध्ययन और बृहत् अनुसंधान जो उच्चतम न्यायालय के ऐसे निर्णयों को बुद्धिमत्तापूर्ण बनाता है, जिन्हें अन्तिमता प्राप्त होती है तथा पुराने मुकदमों का अनियंत्रित बकाया कार्य जो अन्याय को और लम्बा खींचकर, हमारी न्यायिक पक्रिया को महंगा बना देता है—ये सभी बातें अधिकांश मामलों के लिए न्यायालय का समय बचाने की दृष्टि से न्यायालय के प्रबन्ध को सुव्यवस्थित करने और दोषरहित बनाने पर जोर देती हैं, जिससे कि मामलों की क्वालिटी और उनको विनिश्चित किए जाने की संख्या का कम से कम त्याग करना पड़े। यदि, ऐसी कोई अधिक क्षति हुए बिना, कतिपय वर्ग के मामलों का निपटारा मौखिक सुनवाई के बिना किया जा सकता है, तो वह ऐसा प्रयोग न करने के लिए कोई वैद्य कारण नहीं है। यदि पेपरबुक का बारीकी से परिशीलन करने पर न्यायाधीश का यह मत हो कि ममाले में कोई सार या कोई विशेष आधार नहीं है, तो सामान्यतः मौखिक दलील देकर मामले का निपटारा फरने में कोई हर्ज

नहीं है। वास्तविक समस्या इस बात का पता लगाने की है कि कौन-से वर्ग के मामलों का निपटारा, अन्याय की जोखिम उठाए बिना तथा मौखिक सुनवाई के बिना किया जा सकता है। यह अनन्तिम दोषाक्षमता का अन्तिम न्यायालय जो सर्वोच्च न्यायालय हैं, जो मुकदमों का निपटारा न केवल चुनौती से परे करता है, बल्कि एक ऐसा न्यायिक संस्थान भी है जिस पर देश की विधि को प्राधिकृत रूप से घोषित करने की सांविधानिक उत्तरदायित्व भी है। इसलिए, यदि मौखिक सुनवाई प्रक्रिया को त्रुटिहीन बनाएगी, तो उसका त्याग नहीं किया जाना चाहिए। इस पर भी जहां राष्ट्रीय महत्व के विवाद्यक, जिनका हल केवल उच्चतम न्यायालय ही पर्याप्त रूप से कर सकता है, अन्तर्ग्रस्त न हों और यदि उचित मौखिक सुनवाई कर दी गई हो और उचित आदेश पहले ही कर दिए गए हों, तो न्यायापीठ के न्यायाधीशों के सामने पुर्नविलोकन विषयक पिटीशन की मांग अधिक नहीं हो सकती, विशेषतया तब यदि मामले को देखने से कोई नई बात का पता न चलता हो, या मुकदमे में कोई गम्भीर बात न हो। यहां पर भी यदि कोई ऐसा मामला हो जिसकी परीक्षा की जानी चाहिए या जिससे यह ध्वनित होता हो कि पहले गलती हो गई है, तो न्यायालय मामले की मौखिक सुनवाई के लिए तारीख निश्चित कर सकेगा। (परिचालन द्वारा निपटारा सोच समझकर उठाई गई ऐसी जोखिम है जिसमें कोई समस्या या खतरा दृष्टिगोचर नहीं होता है।

25. बहुत से देशों में न्यायिक प्रक्रिया के कई प्रक्रमों पर मौखिक तर्क को निर्बन्धित कर दिया गया है। संयुक्त राज्य अमेरीका में काउन्सेल द्वारा फाइल किए गए पुनः सुनवाई (हमारी भाषा में पुर्नविलोकन) के लिए निरर्थक पिटीशनों की बड़ी संख्या की समस्या ने न्यायालय को सुनवाई के निर्बन्धित नियम विरचित करने के लिए बाध्य किया। एक नियम में निम्नलिखित बात विहित की गई है —

> "पुनः सुनवाई के लिए प्रस्तुत पिटीशन मौखिक तर्क के अध्यधीन नहीं है तथा वह तब तक मंजूर नहीं किया जाएगा जब तक कि वह न्यायाधीश जिसने निर्णय या विनिश्चय में अपनी सहमति व्यक्त की है उसे मंजूर करना न चाहे तथा न्यायालय का बहुमत इस प्रकार अवधारित न करे।[1]"

---

[1] स्टर्न और ग्रेसमैन कृत "सुप्रीम कोर्ट प्रैक्टिस" के 1950 के संस्करण का पृष्ठ 321

1980(2) eILR(PAT) SC 15

इंग्लैंण्ड में हाउस ऑफ लार्ड्स को अपील करने की इजाज़त देना कार्यवाहियों की एक पद्धति है जहां कि बाध्यकारी मौखिक सुनवाई सदैव विद्यमान नहीं होती है। परिपाटी विषयक हाल ही के निदेश को यहां पर निर्दिष्ट किया जा सकता है जो उपयोगी होगा —

> "1 अक्तूबर, 1976 से हाउस आफ लार्ड्स को अपील करने की इजाज़त देने सम्बन्धी-पिटीशन ऐसी अपील को निर्दिष्ट की जाएगी जिसमें तीन 'लार्ड्स आफ अपील' होंगे जो इस बात पर विचार करेंगे कि क्या पिटीशन हाउस द्वारा ग्रहण किए जाने के लायक प्रतीत होता है और यदि वह इस लायक है, तो क्या उसे मौखिक सुनवाई के लिए निर्दिष्ट किया जाना चाहिए।
>
> जहां पिटीशन मौखिक सुनवाई के योग्य नहीं पाया जाता है, वहां पार्लियामेण्ट का क्लर्क पक्षकारों को इस बात की सूचना देगा कि पिटीशन खारिज कर दिया गया है। (1979) 1 डब्ल्यू एल० आर० 497.

संयुक्त राज्य अमेरीका के सुप्रीम कोर्ट के जस्टिस जान एन० हारलर ने प्रबन्ध किए जाने योग्य सीमा तक न्यायालय कार्य को नियंत्रित करने की आवश्यकता समझाते हुए, निम्नलिखित बात कही है

> "·········इस बात को मान्यता न देना अदूरदर्शिता और अबुद्धिमत्ता होगी कि न्यायायल के अन्य कार्य के साथ अच्छे वातावरण में और उचित संतुलन के साथ उत्प्रेष पद्धति को कायम रखना ऐसे विषय हैं जिन पर अधिक गम्भीरता और काल्पनिकता के साथ विचार करने की आवश्यकता है। जैसा कि मैंने दर्शाने का प्रयत्न किया है, समस्या, जैसी कि वर्तमान हालत है, का सार उत्प्रेषण के लिए अनावश्यक आवेदनों के भार में, यदि कमी न हो तो, वृद्धि को रोककर न्यायालय के समय को बर्बाद होने से बचाव करना है।"

(बल देने के लिए रेखांकित)

---

[1] हार्ट एण्ड बैखलर कृत "फैडरल कोर्ट्स एण्ड दि फैडरल सिस्टम" द्वितीय संस्करण पृष्ठ 1605-1607.

26. यह बात महत्वपूर्ण है कि संयुक्त राज्य अमरीका के सुप्रीम कोर्ट में अपील की इजाजत देने का विनिश्चय मंत्रणा करके किया जाता है, न कि न्यायालय में और नियमित सुनवाई में भी बहस के अधिकतम समय को सर्वोच्च न्यायालय में प्राय: निर्बन्धित कर दिया जाता है। नियम 28 के अधीन प्रत्येक पक्षकार के लिए समय एक घंटा है। बहस के समय को नियंत्रित करने वाली यांत्रकी (मशीनरी) दिलचस्प और शिक्षाप्रद है [1] :—

> "बहस करने वाले काउन्सेल को स्वयं अपने समय की गति पर दृष्टि रखना चाहिए—कि उसने बहस का कब प्रारम्भ की और उनके सामने एक बहुत बड़ी घड़ी लगी हुई। काउन्सेल की मेज पर एक टिप्पण रखा रहता है जो काउन्सेल को चेतावनी देता है कि वह मुख्य न्यायाधिपति से यह न पूछे कि कितना समय शेष रहा गया है।
>
> जब काउन्सेल के पास केवल पांच मिनट शेष रह गए हों, तब उसके सामने पाठ-मंच पर एक सफेद प्रकाश तुरन्त ही हो जाता है। जब समय समाप्त हो जाता है, तब एक लाल प्रकाश हो जाता है। मुख्य न्यायाधिपति का काउन्सेल को तुरन्त ही रोकना साम्भाव्य होता है और वे प्राय: काउन्सेल को अपना वाक्य समाप्त करने से अधिक कोई बात करने नहीं देते हैं। लाल प्रकाश दोपहर दो बजे भोजन की छुट्टी को और साढ़े चार बजे दिन भर की बैठक की सामाप्ति को भी सूचित करता है।"

ग्रेगान के सुप्रीम कोर्ट के एसोसिएट जस्टिस जार्ज रोसमेन ने, दक्षता या वकालत को हानि पहुंचाए बिना, मौक्षिक दलीलों को कम करने का तर्क-आधार इस प्रकार बतलाया है[2] :—

> "निर्णय पंजी में मुकदमों की अधिक संख्या के कारण अपील न्यायालयों को मौखिक तर्क के लिए आबंटित समय को कम करने के लिए बाध्य होना पड़ा है, जिसका परिणाम यह है कि (विधि) व्यवसाय से सम्बन्धित लोग इस बात पर आश्चर्य करते हैं कि क्या न्यायालय मौखिक तर्क की परवाह करते हैं—आज की परिपाटी यह

---

[1] स्टर्न और ग्रेसमैन कृत सुप्रीम कोर्ट प्रेक्टिस, पृष्ठ 303.

[2] अमेरिकन बार एसोसिएशन जर्नल, जनवरी, 1959 खण्ड 45, सं० 1, पृष्ठ 676.

1980(2) eILR(PAT) SC 15

दर्शित करती है कि वकालत प्रभावी हो सकती है, भले ही निवेदन की कालावधि कम क्यों न हो। कुछ न्यायवादी उस समय भी प्रभावी हो सकते हैं, भले ही निवेदन की कालावधि कम क्यों न हो। कुछ न्यायवादी तीस मिनट में ही चकित करने वाली बातें तब भी कर सकते हैं, जब कोई और बात कहने के लिए उपलभ्य न हो।"

इंग्लैंड में जो परिपाटी है, वह निस्संदेह भिन्न है। डलमार कारलन ने स्थिति को सही रूप से इस प्रकार उपवर्णित किया है[1] :—

"संयुक्त राज्य अमरीका में मौखिक बहस पक्षसार के लिए गौण महत्व की है तथा उसकी अस्तित्वावधि अत्यधिक सीमित होती है। संयुक्त राज्य अमरीका के सुप्रीम कोर्ट में प्रत्येक पक्षकार को एक घंटा दिया जाता है, किन्तु अनेक अपील न्यायालयों में प्रत्येक पक्षकार को कम समय दिया जाता है, किन्तु उसमें भी प्रत्येक पक्षकार को अधिक से अधिक पन्द्रह मिनट या आधा घंटा बहुधा दिया जाता है। काउन्सेल द्वारा पढ़कर सुनाए जाने की बात को बहुत नापसंद किया जाता है। न्यायाधीश वे बातें सुनना पसन्द नहीं करते हैं जो वे स्वयं पढ़ सकते हैं। वे साक्ष्य और निचले न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय के बारे में ऐसी सभी जानकारी जिसकी अवश्यकता उन्हें होती है, तथा जिसका अवलम्ब प्राधिकारियों ने अपील के पक्षसार और अभिलेख का अध्यन करके लिया था, प्राप्त करने की अपेक्षा करते हैं। वे नज़ीरों के बारे में यह जिनके बारे में दावा किया गया है कि वे उस विनिश्चय को लागू होते हैं, विस्तारपूर्वक चर्चा करने को प्रोत्साहित नहीं होते हैं तथा वे, विधि-कार्य से सम्बन्धित लिपिकों की सहायता से या उनके बिना, अपने ही चैम्बर में सापेक्ष एकान्तता में स्वयं ही ये कार्य करते हैं। इंग्लैण्ड में जहां कोई लिखित पक्षसार नहीं होते हैं, वहां सब मौखिक तर्क महत्वपूर्ण होते हैं। उनकी अस्तित्वावधि मनमाने ढंग से कभी भी सीमित नहीं की जाती जबकि कुछ मौखिक तर्क कुछ क्षणों तक चलते हैं, अन्य बहुत दिनों तक या सप्ताहों तक चलते रहते हैं। मौखिक तर्क के समय पर मामूली तौर से किया जाने वाला एक मात्र नियंत्रण औपचारिक होता है जो न्यायाधीशों के तदर्थ सुझावों के रूप में होता है।"

---

[2] 1962 खण्ड 78 लॉ क्वार्टर्ली रिव्यू 371, पृष्ठ 379-380.

27. वाशिंगटन डी० सी० में मार्बल पैलेस (सुप्रीम कोर्ट) की पद्धतियों की यहां पर कुछ संगति है, यद्यपि वे हमारे लिए निश्चित रूप से अनिवार्य नहीं हैं। जॉन फ्रैंक ने निम्नलिखित मत व्यक्त किया है[1]—

> "चूंकि निर्णय पंजी में मामले की सख्या बहुत अधिक हो गई है, इसलिए यह आवश्यक नहीं है कि बहस के लिए अनुज्ञात समय को कम किया जाए। आज की पद्धति के अनुसार प्रत्येक पक्षकार को या तो आधे घंटे या एक घंटे का समय दिया जाता है, जो मामले की जटिलताओं पर निर्भर है। यह बात स्पष्ट रूप से लम्बी भूमिकाओं या वाकपटुतापूर्ण उपसंहारों को अपवर्जित करती है। प्रायः समय का नियंत्रण कठोरता से किया जाता है। आख्यान यह है कि जैसे ही अटर्नी ने 'इफ' (यदि) कहा मुख्य न्यायाधिपति ह्यूजेज़ ने ही टोक दिया था। यदि बहुत से व्यवधान न हों, तो एक घंटा पर्याप्त है। वकीलों को संक्षेप में कहना सीखना चाहिए।"

हम यह उपधारणा करते हैं कि न्यायाधीशों पर अतिरिक्त भार पड़ेगा। हम यह सिद्ध करने के लिए पर्याप्त रूप से कह चुके है कि न्याय सम्बन्धी प्रक्रिया के सीमित क्षेत्र में मौखिक तर्क पर रोका लगाकर विफल नहीं किया जाना चाहिए। संशोधन द्वारा केवल यही बात की गई है। पूर्वतर और विद्यमान स्थिति के बीच संक्षिप्त रूप से तुलना करने से यह बात सिद्ध हो जाएगी।

28. पूर्वतर नियम में पुनर्विलोकन की कार्यवाही ग्रहण करने के लिए वकील का प्रमाणपत्र एक पुरोभाव्य शर्त थी। संशोधित नियम में काउन्सेल द्वारा प्रमाणपत्र दिए जाने की आवश्यकता नहीं है, किन्तु न्यायपीठ के इस भाव के प्रमाणपत्र ने कि प्रथमदृष्टया नियम में वर्णित प्रकार की त्रुटि के कारण निर्णय दूषित हो गया है, उसका स्थान ले लिया है। इसके पश्चात् दोनों ही दशाओं में मौखिक रूप से वकालत की जा सकती है। इस प्रकार एकमात्र अन्तर जिसकी कभी कभी उपधारणा की जाती है, सन्देह नहीं है कि मौखिक तर्क प्रथम बार और अन्तिम रूप से समाप्त कर दिए गए हैं। अभी भी मौखिक सुनवाई की जा सकती है और की जाती है किन्तु

---

1 जान पी० फ्रैंक कृत "मार्बल पैलेस—दि सुप्रीम कोर्ट इन अमेरिकन लाइफ" 1958 संस्करण पृष्ठ 92.

सामान्य अनुक्रम में नहीं अपितु तभी यदि उन न्यायाधीशों के समाधानानुसार जिन्होंने मामले की पहले-पहल सुनवाई की थी, उस समय आपतवादिक स्थितियों की उपेक्षा करते हुए आधार सिद्ध कर दिए जाते हैं। नियम की शक्तियों पर किए गए आक्षेप को निवारित करने के लिए हम पर्याप्त मत व्यक्त कर चुके हैं। यदि उसका संतुलित रूप से मूल्यांकन किया जाए, तो कोई भी बात मनमानी रहस्यपूर्ण और अनुचित नहीं है।

29. यह सम्भाव्य धारणा कि हम खुले न्यायालय में मौखिक वकालत के मूल्य को कम कर रहे हैं, अवश्य ही दूर कर दी जानी चाहिए। अनुभव से यह पता लगा है कि सभी स्तरों पर विधिज्ञ-वर्ग ने मौखिक तर्कों और लिखित पक्षसार के जरिए न्यायिक न्याय को प्रक्रिया में सहायता की है। न्याय भी वैसे ही एक कला है, जैसी कि वकालत एक कला है। न्यायालय-पद्धति के कृत्यों को पूरा करने के लिए दोनों के बीच सामंजस्यपूर्ण पारस्परिक सम्बन्ध होना आवश्यक है। न्यायिक क्षेत्र में कितनी ही असाधारण स्थिति क्यों न हो, खुले न्यायालय में मौखिक वकालत की महत्वपूर्ण आवश्यकता से इनकार नहीं किया जा सकता। वास्तव में, मौखिक तर्क को पूरी तरह से समाप्त करने के लिए कोई न्यायिक मांग नहीं है। किन्तु विनिश्चय की प्रक्रिया में अपील स्तर पर मौखिक तर्क की भूमिका का उचित मूल्यांकन करने के लिए अब समय आ गया है। न्यायाधिपति हरलन ने इस बात पर बल दिया है कि मौखिक तर्क को महत्वपूर्ण भूमिका निभानी चाहिए। वह "अपीली प्रक्रिया का पारम्परिक रूप से अनुज्ञात अंग नहीं है" किन्तु अपील में वकालत करने का निश्चायक रूप से प्रभावी उपकरण है। उन्होंने सही तौर से इस बात पर बल दिया है कि ऐसे बहुत से न्यायाधीश हैं "जो लिखित शब्दों की बजाय मौखिक तर्क को अधिक ग्रहण करते हैं।" यह मत व्यक्त करते हुए बड़े पते की बात की है :—

> "मेरे विचार से विवाद्यक के मर्म तक पहुंचने में और इस बात को ढूंढने में कि आधुनिक अपील न्यायालयों के व्यस्त कार्यक्रम में निश्चित समय सीमाओं के भीतर भी, कि सचाई कहां है, प्रक्रिया की पवित्र पद्धति का कोई भी अनुकल्प नहीं।"[1]

---

[1] कार्निल लॉ क्वार्टर्ली, खण्ड 41, 1955-56, पृष्ठ 7.

1980(2) eILR(PAT) SC 15

हम संयुक्त राज्य अमरीका के सुप्रीम कोर्ट के उन अनुभवी न्यायाधीश के निष्कर्ष से पूर्णतया सहमत है जो उन्होंने मौखिक तर्क के सम्बन्ध में अपने शोध-प्रबन्ध में निकाला है[1] :—

"मौखिक तर्क प्रेरक होता है और यदि वह ठीक से किया जाए, तो उससे अच्छे लाभ की प्राप्ति होती है और मेरे विचार से जिस दिन हमारे अपील न्यायालयों में मौखिक तर्क के स्थान का अवमूल्यन किया जाएगा और मौखिक वकालत को परम्परा के कारण या किसी वकील पर अपने पक्षकार द्वारा जोर डाले जाने के कारण केवल रीतित कार्य के रूप में बुरी दृष्टि से देखा जाएगा, वह अमरीकी विधिज्ञ-वर्ग के लिए एक दुर्भाग्यपूर्ण दिन होगा।"

30. मौखिक वकालत का महत्व विद्वान लेखकों के बहुत से लेखों का विषय रहा है। जैसा कि फ्रैडरिक बर्लेज वीनर ने 'हार्वर्ड ला रिव्यू' में लिखा है।"[2]

"अपील न्यायाधीश, वस्तुतः किसी अपवाद के बिना, यह बात कहते हैं कि कोई भी मामला मौखिक तर्क के बिना कभी भी पेश नहीं किया जाना चाहिए। बहुतों के इसी प्रकार के विचार मुद्रित अभिलेख पर मौजूद हैं और उनका यह भी कहना है कि उन्हें उस समय वस्तुतः खेद होता है, जब कभी भी क्लर्क यह घोषणा करता है कि कोई मामला केवल पक्षसार के आधार पर ही पेश किया जा रहा है। ये अभिव्यक्तियां उस तथ्य को प्रकट करती हैं कि निर्णय का काम उस समय बहुत ही कठिन हो जाता है, जब काउन्सेल अपनी वास्तविक स्थिति या उस सिद्धान्त की सीमाओं के सम्बन्ध में जिसके बारे में उसने पक्षसार में तर्क पेश किए हैं, प्रश्न पूछे जाने के लिए उपस्थित नहीं रहता।"

हम मौखिक वकालत के सम्बन्ध में अमरीकी न्यायाधीशों ने जो यह मत व्यक्त किया है, हम उससे सहमत हैं[3] :—

---

1 कार्निल ला क्वार्टर्ली, खण्ड 41, 1955-56, पृष्ठ 11.

2 कार्निल ला क्वार्टर्ली, खण्ड 62, 1948 पृष्ठ 59.

3 स्टर्न और ग्रेसमैन कृत सुप्रीम कोर्ट प्रैक्टिस पृष्ठ 316.

1980(2) eILR(PAT) SC

"सुप्रीम कोर्ट में नम्यता विशेष रूप से आवश्यक है। सन् 1928 में मुख्य न्यायाधिपति ह्यूजेज ने सुप्रीम कोर्ट के समक्ष पेश किए जाने वाले तर्क को "मौखिक विचार-विमर्श के रूप में वर्णित किया था। सन् 1933 तत्कालीन प्रोफेसर फैंकफर्टर ने कहा था कि न्यायालय का वातावरण मौखिक तर्क के लिए अनुकूल होता है और काउन्सेल पर अधिरोपित निर्बन्धन प्रभावोत्पादकता को कम कर देते हैं। किन्तु सही तर्क विवाद्यकों को छानबीन से, विशेषतया न्यायपीठ द्वारा बारीक प्रश्न करने से—न्यायालय की सर्वाधिक जीवंत परम्पराओं में से एक को बनाए रखता है।"

इस प्रकार अनुनयन की पद्धतियों के बीच, मौखिक तर्क की शक्ति को न्याय की क्वालिटी की बहुत ही बड़ी कीमत चुकाए बिना, विशेषतया उच्चतम न्यायालय के मुकदमों में त्यागा नहीं जा सकता। सम्भव है कि पक्षसार मूल्यवान हो। वास्तव में अच्छी तरह से तैयार किए गए पक्षसार में मामले की विस्तृत कहानी बताई जाती है। मौखिक तर्क में केवल महत्वपूर्ण स्थलों के बारे में बताया जाता है। मौखिक तर्क की सर्वोच्च सफलता तथा न्यायिक प्रक्रिया में अनुनयी कलाओं की परिधि से उसे निकालने की गम्भीर जोखिम के बारे में जार्ज रोजमन ने निम्नलिखित मत व्यक्त किया है[1] :—

"मौखित तर्क में उस मानवीय अनुभव के रूप में जो पक्षकारों को हुआ था किन्तु जिसका समाधान वे नहीं कर सकते थे। मामले का शब्द-चित्र पेश किया जा सकता है इस प्रकार मौखिक तर्क विधि को मानवीय बनाए रखने में सहायता हो सकता है और जीवन की आवश्यकताओं को अनुकूल बना सकता है। विधिज्ञ-वर्ग का प्रतिनिधित्व बहुत अच्छी तरह से करता है।"

31. हम संक्षेप में कह सकते हैं कि मौखिक दलीलों का मूल्य कम करने की जरूरत नहीं है और न ही लिखित पक्षसार का मूल्यांकन आवश्यकता से अधिक करने की जरूरत है। दोनों का मिश्रण ही एक अच्छी पद्धति है। यहां पर न्यायाधीश ब्रेन मेकन्ना के निम्नलिखित शब्दों को दोहराना प्रसगोचित है :—

---

1 अमेरिकन बार एसोसिएशन जर्नल (उपर्युक्त) पृष्ठ 676

"त्रुटि यह है कि हमारी प्रक्रिया के नियम, लिखित तर्क को हतोत्साहित करके, खुले न्यायालय में व्यापक रूप से दीर्घकालिक सुनवाई को सम्भव बनाते हैं। बहुत से जिम्मेदार व्यक्ति उनमें परिवर्तन करने की बात अधिक सोच सकते हैं। सिविल मामलों में ऐसे लिखित तर्कों से जो संक्षिप्त मौखिक चर्चा द्वारा अनुपूरित हों, कभी-कभी समय की बहुत अधिक बचत होती है।"

न्यायिक प्रक्रिया इस कारण से संकटावस्था में नहीं है कि न्यायालयों में मुकदमों की बाढ़ सी आ गई है। जागरूक लोगों और लोकतंत्रात्मक अधिकारों वाले विकासशील देशों में यह बात अपरिहार्य है कि मुकदमे बढ़ते चले जाएँ किन्तु न्यायाधिपति वारेन बर्गर ने लिखा है :—

"इस शताब्दी के तीसरे चौथाई भाग के अन्त में हम अभी भी मुख्य रूप से उन्हीं मूलभूत पद्धतियों, उन्हीं क्रियाओं और उसी तंत्र से न्यायालयों को चलाने का प्रयत्न कर रहे हैं जिनके बारे में रासको पाउन्ड ने सन 1906 में कहा था कि उक्त बातें उसी समय पर्याप्त नहीं हैं। आज के गतिमान युग में हम न्यायालयों को सन 1900 में प्रचलित पुरानी पद्धतियों, रीतियों और तन्त्र से ही चलाने का प्रयत्न कर रहे है।"

यदि हमें न्याय प्रशासन की वर्तमान रुग्णावस्था का उपचार करना है, तो उसमें प्रबन्ध तकनीकों तथा अनुभवग्राही कौशल का सूत्रपात करना होगा। परिचालन के जरिए मंत्रणा करके जिसकी अनुपूर्ति उचित मामलों में मौखिक सुनवाई द्वारा की गई हो, पुनर्विलोकन विषयक पिटीशनों के निपटारे से सम्बन्धित नियम, सही दिशा में उठाया गया एक छोटा कदम है। वास्तव में हम अपनी प्रक्रिया का आधुनिकीकरण करके सामाजिक न्याय को अग्रसर कर रहे हैं जिसे प्राप्त करने का इंतजार वादार्थी समुदाय कर रहा है।

32. हमने न्याय सम्बन्धी बातों की वास्तविकताओं को ध्यान में रखते हुए प्रारम्भिक सुनवाइयों और पुनर्विलोकन सम्बन्धी सुनवाइयों के विषय में न्यायिक प्रक्रिया के मापदण्ड पहले ही उपवर्णित कर दिया है। सुनवाई की शक्ति में मौखिक तर्क की भूमिका प्रथम दौर में होती हैं किन्तु दूसरे दौर में उसी न्यायालय में यह शक्ति, भागतः समप्य होती है। आखिरकार मौखिक सुनवाई को किसी न किसी प्रक्रम पर अवश्य ही समाप्त करना होगा और न उसे न्यायिक प्रक्रिया की ऐसी अनिवार्यता ही माना जा सकता है

जिससे विचलन सम्भव न हो। तुलनात्मक विधि विश्वास उत्पन्न करती है और उस दृष्टिकोण से उस हैल्सबरी (खण्ड के 10 पैरा 701) के प्रति निर्देश कर सकते हैं जिसमें मौखिक सुनवाई किए बिना हाउस आफ लार्ड्स में अपील करने की इजाजत देने सम्बन्धी पिटीशनों के निपटारे के बारे में उल्लेख किया गया है। उसी प्रकार अमेरिकन ज्यूरिसप्रूडेंस में भी (खण्ड 5, पैरा 979 विशेषतया पादटिप्पण 13) इसी प्रकार की प्रक्रिया का समर्थन किया गया है।

33. श्री मृदुल ने हमारे समक्ष इस बात पर बल दिया कि सर्वोच्च स्तर पर न्यायाधीश द्वारा बनाए गए इस विधान से अनुच्छेद 14 का अतिक्रमण स्पष्ट रूप से होता है फिर भी हमारे समक्ष किसी भी रिट पिटीशन में यह स्पष्ट नहीं किया गया है कि कार्यप्रणाली सम्बन्धी इस नियम का आश्रय पाए बिना कि रिट पिटीशन में किसी मुद्दे को उठाए बिना उस पर बहस करने नहीं दी जा सकती, न्यायाधीश को अपने ही द्वारा किए गए कार्य को अविधिमान्य ठहाराना चाहिए। निश्चित रूप से न्याय और सत्य को बात के प्रकट होने से कभी भी डर नहीं होता है, और न ही उनके लिए प्रतिष्ठा का कोई प्रश्न होता है। निश्चित रूप से विधान का प्रारूपण करना कोई सरल कला नहीं है तथा न्यायाधीश अपने कार्य-क्षेत्र से बाहर कलाकार नहीं है। अन्यथा भी उत्कृष्टतम व्यक्तियों से भी भूलें होती हैं। इसलिए यदि हम यह पाते हैं कि हमारे नियम शून्य हैं, तो हमें उन्हें उसी प्रकार घोषित करना चाहिए और हम उन्हें उस रूप में घोषित करेंगे। अभिवचनों में विभेद के आधार का लोप करके प्रायः बहस का निषेध किया जा सकता है, क्योंकि दूसरे पक्षकार पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है या आवश्यक तथ्य अभिलेख पर नहीं हो सकते हैं। किन्तु यहां पर ऐसी कोई कमी विद्यमान नहीं है। किसी तकनीकी अपेक्षा के कारण वादकर्त्ता को न्याय के लिए अभिवाक् करने से नहीं रोका जाना चाहिए। आखिरकार, जैसा कि एक बार जोमोंफ्रैंक ने कहा था, न्यायालय लोगों के होते हैं। वादार्थी अन्याय से पीड़ित विधि के मारे हुए होते हैं जो अपने साथ किए गए अन्याय को दूर करना चाहते हैं। क्या आप अस्पताल में किसी पीड़ित व्यक्ति से यह कहेंगे कि चूंकि तुमने रोग के निश्चित लक्षण बहुत देर से बतलाए हैं, इसलिए देर से बात बतलाने के अपराध में उपचार किए बिना ही तुम्हें छुट्टी दे दी जाएगी। मानवतावाद जिसकी गहराई में न्याय निहित होता है, कोई अभिवाक् ग्रहण करके अनुतोष देने से तब तक इनकार नहीं कर सकता जब तक कि किसी अन्य व्यक्ति

को क्षति न पहुंचती हो। हमने दलील पेश करने की अनुज्ञा दी है और उस पर विचार किया है।

34. नियम को देखने से ही स्पष्ट है कि वह सिविल कार्यवाहियों में किए गए आदेशों के पुनर्विलोकन के लिए व्यापक आधार प्रदान करता है। किन्तु अभिलेख को देखने से ही यह गलती स्पष्ट है कि वह दाण्डिक कार्यवाहियों से सम्बन्धित आधार को सीमित करता है। किसी भी दशा में न्यायिक गलती को दूर करने के लिए विधि को तब और ध्यान रखना चाहिए जब जीवन या स्वतन्त्रता खतरे में हो, क्योंकि सिविल शास्तियां प्रायः बहुत ही कम अभिघाती होती हैं। इसलिए यह उपधारणा करनी युक्तियुक्त है कि नयम के विरचित करने वालों का आशय दाण्डिक आदेशों या निर्णयों का निर्बन्धित पुर्विलोकन करना नहीं हो सकता। अन्य तरीके की भी सम्भावना हो सकती है मान लीजिए, उच्चतम न्यायालय ने किसी अभियुक्त को मृत्यु दण्डादेश दिया है तथा 'मृतक' को न्यायालय में पेश नहीं किया है तथा न्यायालय अभिलिखित परिसाक्ष्य के दुःखद विश्वासघात का पता लगा लेता है। क्या ऐसे समय में न्यायालय फांसी के दण्डादेश का पुनर्विलोकन करने के लिए और उसे अपास्त करने के लिए लाचार है? हमारे विचार से वह नहीं है। पुनर्विलोकन की शक्ति अनुच्छेद 137 में दी गई है और वह सब कार्यवाहियों में समान रूप से व्यापक है यह नियम केवल शक्ति के भण्डार में से होने वाले प्रवाह को मात्र नियंत्रित करता है। धारा स्रोत में बाधा उत्पन्न नहीं कर सकती इसके अलावा, निर्वचन की गतिशील शक्तियां संदर्भ की मांग और मूल पाठ की शब्दिक सीमाओं पर निर्भर हैं। यहां पर "अभिलेख" से ऐसी कोई भी सामग्री अभिप्रेत है जो पहले से ही अभिलेख पर है या जो न्यायालय अनुज्ञा से अभिलेख पर लाई जा सकती है। यदि न्याय की यह मांग हो कि न्यायाधीशों को कोई महत्व सामग्री अभिलेख में शामिल करने की अनुज्ञा देनी चाहिए, तो वह सामग्री अभिलेख का भाग बन जाती है; और यदि इसमें कोई स्पष्ट गलती है, तो उसमें सुधार करना आवश्यक हो जाता है।

35. प्रयोजन स्पष्ट भाषा लचीली तथा आवश्यक शक्ति का निर्वचन प्राकृतिक रूप से व्यापक होना चाहिए। मूल शक्ति अनुच्छेद 137 से व्ययुत्पन्न होती है और वह दाण्डिक कार्यवाहियों के लिए उतनी ही विस्तृत है जितनी कि सिविल कार्यवाहियों के लिए। इसलिए नियम (आदेश 40 नियम 2) की शब्दावली में जो अन्तर है, उसके बारे में यह अर्थान्वयन किया जाना चाहिए कि उसकी परिधि के भीतर वही कार्य-क्षेत्र आता है तथा उसें कोई कृत्रिम

विसंगति पैदा करने वाला नहीं समझा जाना चाहिए। यदि 'अभिलेख' शब्द से उसके अर्थ विषयक परिधि के भीतर कोई ऐसी सामग्री अभिप्रेत हो जो न्यायालय की इजाजत से अभिलेख पर बाद में लाई गई हो, तो उसकी परिधि के भीतर बाद की घटनाएं, नया दृष्टिकोण और ऐसे अन्य आधार आएंगे जो हमें सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 47 के नियम में मिलते हैं। हमें सिविल और दाण्डिक कार्यवाहियों के क्षेत्रों को समान ठहराने में कोई अजेय कठिनाई तब नहीं होती, जब कि पुनर्विलोकन की शक्ति उसी स्रोत से प्राप्त होती है।

36. वास्तव में दाण्डिक मामलों से सम्बन्धित पुनर्विलोकन की शक्ति का प्रश्न न्यायालय में बहस के दौरान ही उठाया गया था। किन्तु जब सम्पूर्ण मामला हमारे समक्ष है, तो हमें निश्चित रूप से ऐसे प्रत्येक पहलू पर जिसकी बाबत बहस की गई हो, विस्तार से विचार करना चाहिए, न कि कटेछंटे भागों में थोड़ा-थोड़ा करके। यह तो हमारी बाध्यता का परिहार करना होगा। अतः हमने आधार स्पष्ट कर दिया है, क्योंकि प्रश्न महत्वपूर्ण और बारम्बार उठने वाला है तथा सुनवाई के दौरान उठाया गया था। दाण्डिक कार्यवाहियों में पुनर्विलोकन की अधिकारिता सम्बन्धी इस विनिर्णय से सम्भावित संविवाद समाप्त हो जाता है तथा जब तक कि उसको उलट न दिया जाए, वह स्वयं इस न्यायालय पर उतना ही आबद्धकर है जितना कि वह वादार्थियों पर है। नजीरों से सम्बन्धित विधि की यही नीति है और अनुच्छेद 141 का यही आशय है।

37. जबकि हम इसे समाप्त करने जा रहे हैं, हम न्यायिक कार्यवाहियों में मौखिक सुनवाई सम्बन्धी दृष्टिकोण को सही रूप में प्रस्तुत करना चाहते हैं। किसी बात को पेश करने या उसके अनुनयन के एकमात्र साधन के रूप में मौखिक दलीलों या असीमित बहस में अंधविश्वास रखने और अभ्यावेदनों की अच्छी तरह से लेखबद्ध पाण्डुलिपियों की प्रभावशीलता को कम करने की निन्दा इस रूप में की जा सकती है कि वह असंगत है। यह सच है कि हमारी न्यायिक संस्कृति मौखिक वकालत और सार्वजनिक सुनवाई का समर्थन करती है क्योंकि गोपनीय चिंतन और गुप्त विचार-विमर्श मामूली तौर से अभिशाप हैं। यदि इसी बात को साधारण रूप से कहा जाए, तो न्याय की अभिवृद्धि करने में मौखिक वकालत एक निश्चायक कला है न्यायालय विधिज्ञ-वर्ग के बिना काम नहीं चला सकता। हमारी पद्धति में वकालत उस

समय क्रियाशील हो जाती है जब वह मौखिक रूप से की जाती है और उस समय शक्तिहीन हो जाती है जब वह लेखबद्ध अभ्यावेदन के रूप में पेश की जाती है। हम इस बात का दावा नहीं करते हैं कि मौखिक तर्क को स्थायी रूप से समाप्त कर दिया जाना चाहिए। ऐसा रूप अपना घृणा के तर्क के प्रति अतिप्रतिक्रिया व्यक्त करना है। किन्तु हमें इस बात को कम महत्व देना चाहिए कि जबकि वकील की वकालत को न्यायिक मापदण्ड के अनुसार विशेषतया तब यदि न्यायाधीश अधीन हों, नहीं बनाया जा सकता, युक्तसंगत बनाकर, दोषरहित बनाकर संक्षिप्त करके और विशेष स्थितियों में उसका लोप करके बहस करने का सबल आधार मौजूद है सुप्रीम कोर्ट में पुर्नविलोकन की कार्यवाहियां अन्तिम प्रवर्ग के अधीन आती हैं। न्यायालय कार्य-युक्तियों के बारे में कोई अनम्यता नहीं है तथा न्यायालय को मौखिक बहस का समय सीमित करने की या; आत्यादिक मामलों में मौखिक तर्क को पूर्णतया समाप्त करने की लचीली शक्ति सदैव प्राप्त होनी चाहिए, क्योंकि सर्वोपरि सिद्धान्त उचित न्याय करना है इसलिए यह बात बिल्कुल स्पष्ट है कि जहां न्याय को कोई क्षति नहीं होगी, वहां पुर्नविलोकन विषयक कार्यवाहियों से भिन्न प्रवर्गों में भी समय सीमित करने में या लिखित दलील देय में मौखिक तर्क पर भागत: रोक लगाई जा सकती है हमारा अभिप्राय केवल यह उपदर्शित करना है कि चाहे "सुनवाई" का ढंग मौखिक हो या लिखित या दोनों ही हों चाहे वह विस्तृत या नियंत्रित हो, उसे अगणित तथ्यों और भविष्य में होने वाली बातों पर अवश्य ही निभर होना पड़ेगा। इस सम्बन्ध में, उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों पर विश्वास करना ही पड़ेगा तथा जबकि प्रक्रियात्मक न्याय को प्रभावित करने वाले विनिचय किए जाएं, तो विधिज्ञ-वर्ग को अवश्य ही सहयोजित करना होगा। इस प्रकार, यदि लचीला रुख अपनाया जाए, तो हमें अभिप्रायों के अर्थ को स्पष्ट करने में कोई वैम्षय नहीं दिखाई पड़ता।

38. हमें इन चुनौतियों में कोई बल नहीं दिखाई पड़ता और हम यह आशा करते हैं कि विधिज्ञ-वर्ग न्यायिक पद्धति और न्यायालय की रीति-नीति के आधुनीकरण मानवीकरण के क्षेत्र में प्रयोग करने में अपना योगदान देंगे।

न्यायाधिपति पाठक—

39. हम इस रिट पिटीशन में प्रत्यक्ष रूप से विषयों पर अपने विद्वान बन्धु न्यायाधिपति वी० आर० कृष्ण अय्यर से आम तौर से सहमत हैं। किन्तु हम सुप्रीम कोर्ट को रूल्स 1966 आदेश 40 के नियम 3 की

परिधि सम्बन्धित कतिपय पहलुओं पर कुछ विचार अवश्य ही व्यक्त करना चाहते हैं।

40. प्रारम्भ में ही हम यह कह सकते हैं कि चूंकि हम केवल पुनर्विलोकन विषयक आवेदन के सम्बन्ध में मौखिक सुनवाई की आवश्यकता के प्रश्न पर विचार कर रहे हैं, इसलिए हम इस मुद्दे पर कि क्या मौखिक सुनवाई न्यायालय के समक्ष पेश किए गए अन्य प्रकार के मामलों निपटारे में एक अनिवार्य वक्ता है, अपनी कोई राय व्यक्त नहीं करना चाहते। यह एक ऐसा प्रश्न है जो हमारे विचार से हमें केवल तभी उठाना चाहिए जब वह प्रत्यक्ष रूप से उद्भूत हुआ हो।

41. पुनर्विलोकन विषयक आवेदन के सम्बन्ध में हमें यह बात स्पष्ट है कि मौखिक सुनवाई उस दशा में अनिवार्य अपेक्षा नहीं होती, यदि प्रारम्भिक परीक्षा पर पुनर्विलोकन विषयक आवेदन सारहीन पाया जाता है पुनर्विलोकन विषयक आवेदन मूल कार्यवाही का निपटारा करने वाले न्यायालय के निर्णय पर पुनर्विचार करवाने का एक प्रयत्न है। इसमें इससे अधिक कोई बात नहीं की गई है। न्यायालय ने संविवाद के गुणागुण की पहले से ही परीक्षा कर ली है और पुनर्विलोकन की शक्ति की मामूली परिधि को देखते हुए, ईप्सित पुन परीक्षा पहले ही निपटाए गए संविवाद की परिधि से परे नहीं की जा सकती। यह सारतः वही आधार है जिस पर या तो पूर्णतया या भागतः पुनः विचार करना है। तथापि, यदि न्यायालय उसे आवश्यक समझता है, तो मौखिक दलीलों के लिए उपबन्ध करने की सावधानी बरती गई है, वह आवश्यकता दोनों प्रकार के मामलों में से किसी में भी उत्पन्न हो सकता है। न्यायाधीशों के समक्ष पुनर्विलोकन विषयक आवेदन पेश किए जाने पर, वे पुनर्विलोकन विषयक आवेदन के अनुपूरणस्वरूप पिटीशनर द्वारा फाइल की गई किन्हीं भी अतिरिक्त लिखित दलीलों के साथ-साथ उस पर विचार करेंगे। यदि न्यायाधीश पुनर्विलोकन विषय आवेदन की छानबीन करने पर यह अभिनिर्धारित करते हैं कि पुनर्विलोकन के लिए कोई भी मामला नहीं बनता है, तो वे पुनिवलोकन विषयक आवेदन को अस्वीकृत करेंगे। इसके विपरीत, वे यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि पुनर्विलोकन के लिए प्रथमदृष्टया एक अच्छा मामला बनाया गया है और इस कारण के यह निदेश देंगे कि त्यर्थी के नाम सूचना भेज दी जाए, और उसके आधार पर पक्षकारों की उपस्थिति में मौखिक सुनवाई होगी। यह एक अवसर है जिस पर मौखिक

1980(2) eILR(PAT) SC 15

सुनवाई आवश्यक है । यदि न्यायाधीशों का यह समाधान होता है कि पुर्नविलोकन विषयक आवेदन के आधार पर प्रथमदृष्टया कोई मामला बनता है, किन्तु उनका यह समाधान भी नहीं हुआ है कि मामले में किसी भी प्रकार का कोई सार नहीं है और उनकी यह राय है कि पुर्नविलोकन विषयक आवेदन के गुणागुण के आधार पर दृष्टया किसी निश्चित राय पर पहुंचने के लिए आवेदक की मौखिक रूप से सुनवाई की जानी वांछनीय है, तो वे उस तदनुसार सूचना देंगे और मौखिक सुनवाई का अवसर प्रदान करेंगे । ऐसी मौखिक सुनवाई पर यदि अन्तिम रूप से उनका वह समाधान हो जाता है कि पुर्नविलोकन के लिए प्रथमदृष्टया कोई मामला नहीं बनता है, तो न्यायाधीश पुर्नविलोकन न विषयक आवेदन को खारिज कर सकते हैं, किन्तु प्रथमदृष्टया मामला बनने की दशा में वे प्रत्यर्थी के नाम सूचना निकालेंगे और पक्षकारों की उपस्थिति में मौखिक सुनवाई होगी । यह बात स्पष्ट है कि मौखिक सुनवाई से वंचित करने की बात प्रारम्भिक प्रक्रम तक ही सीमित है जबकि पुर्नविलोकन विषयक आवेदन न्यायाधीशों के समक्ष पेश किया हो और उसी दशा में वे इस बात का अवधारण करने के प्रयोजन के लिए आवेदन की छानबीन करते हैं कि क्या मामले में आगे कार्यवाही करने के लिए कोई कारण हैं या वह प्रारम्भ में ही अस्वीकृत किए जाने के लायक है । सिद्धांत के आधार पर यह अभिनिर्धारित करना सम्भव नहीं है कि उस प्रारभिक प्रक्रम पर भी, पुर्नविलोकन का आवेदक मौखिक रूप से सुने जाने का हकदार है । मौखिक सुनवाई का महत्व इस बात में निहित कि न्यायालय को सम्बोधित करने वाले काउन्सेल इस बात की विवेचन करने में समर्थ हो सके कि संविवाद के कौन से ऐसे पहलू हैं जिनपर अधिक प्रकाश डालने की आवश्कता है इसी प्रकार न्यायालय किसी मुद्दे पर अपनी शंकाओं को व्यक्त करने के लिए किसी मौखिक सुनवाई का उपयोग कर सकता है और उन मुद्दों पर काउन्सेल से स्पष्टीकरण प्राप्त कर सकता है । किन्तु यदि इस बारे में किसी भी प्रकार की कोई शंका न हो कि पुर्नविलोकन विषयक आवेदन में बिल्कुल ही कोई सार नहीं है तो मौखिक सुनवाई आवश्यक हो जाती हैं और अधिक से अधिक वह औपचारिक मात्र रह जाती है ।

42. लिखित दलील का सावधानिपूर्वक प्रारूपण किया जा सकता है और सुस्पष्ट रूप से अभिव्यक्ति की जा सकती है, तथा अपील लिखित अन्तर्वस्तु की दृष्टि से उसकी ऐसी व्यवस्था कीं जा सकती है जिससे कि वह दलील की वास्तविक परिधि और गुण को पाठक के ध्यान में स्पष्ट रूप से

1980(2) eILR(PAT) SC 15

ला दे। हम इस बात पर विश्वास नहीं करते हैं कि पुनर्विलोकन विषयक किसी आवेदन में लिखित दलील वादार्थी के पक्षकथन को पेश करने के मामले में पर्याप्त न्याय नहीं कर सकती। यदि मौखिक सुनवाई की आवश्यकता है, तो वह इसके पहले उल्लिखित इस कारण से है कि काउन्सेल को न्यायालय के मस्तिक की शंकाएं मालूम हो जाती हैं तथा न्यायालय को अपनी शंकाएं दूर करने का अवसर प्राप्त हो जाता है। मौखिक सुनवाई का यही लक्षण उसे उसका प्रमुख महत्व और संगति प्रदान करता। किन्तु यह बात कि मौखिक सुनवाई सभी प्रकार के मामलों में तथा प्रत्येक मामले के प्रत्येक प्रक्रम पर आज्ञापक है, ऐसी प्रतिपादना है जिसे स्वीकार करने में हम अपने आपको असमर्थ पाते हैं।

43. रिट पिटीशन खारिज किया जाता है, किन्तु खर्चे के बारे में कोई आदेश नहीं दिया जाता है।

रिट पिटीशन खारिज किया गया।

जैन/श्री०